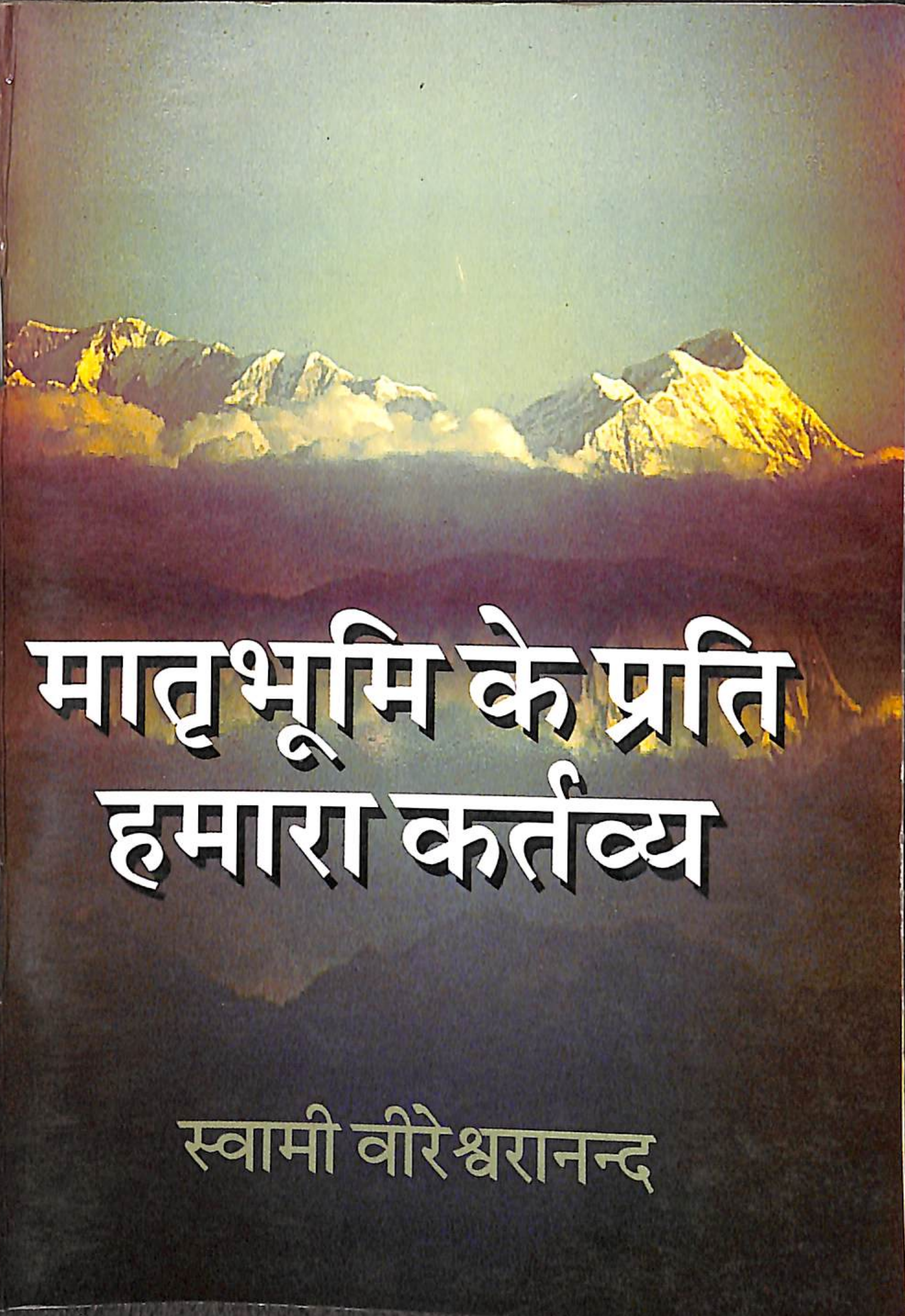


मातृभूमि के प्रति हमारा कर्तव्य

स्वामी वीरेश्वरानन्द

मातृभूमि के प्रति हमारा कर्तव्य

स्वामी वीरेश्वरानन्द

(षष्ठ संस्करण)

रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक :
स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
रामकृष्ण आश्रम मार्ग
धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प १०२

[व २० : प्र ३०]

२१.११.२०००

मूल्य : रु. [illegible].००

मुद्रक :
जयकृष्ण ऑफसेट वर्क्स,
नागपुर. फोन : ७६५३४८

प्रस्तावना

(द्वितीय संस्करण)

श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष हैं। उनके सतरह भाषणों को हम यहाँ पुस्तकाकार में प्रकाशित कर रहे हैं। इन भाषणों में स्वामीजी की अन्तदृष्टि और दूरदृष्टि दोनों का हमें परिचय मिलता है। देश की वर्तमान दशा से वे कितने पीड़ित और चिन्तित हैं यह उनके इन भाषणों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। साथ ही वह उपाय भी हमें ज्ञात होता है, जिसके द्वारा देश को नष्ट होने से बचाकर उन्नति के मार्ग पर बढ़ाया जा सकता है। उनके इन भाषणों की इसी सामयिकता और उपादेयता के कारण, इन रचनात्मक विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर ने उन्हें पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया था। पहला संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया। यह दूसरा संस्करण प्रकाशित करते हमें प्रसन्नता हो रही है।

ये भाषण मुख्य रूप से रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलनों को तथा विद्यार्थियों को सम्बोधित किये गये थे। युवाशक्ति पर ही देश का भविष्य निर्भर होने के कारण इन भाषणों की उपादेयता और भी विशेष हो जाती है। इनमें से कुछ भाषण बँगला में दिये गये थे और शेष अँगरेजी में।

हमें विश्वास है कि चिन्तनशील और जनसाधारण दोनों ही वर्ग के लोग इन विचारों से लाभान्वित होंगे।

नागपुर
१२ जनवरी १९८५
राष्ट्रीय युवक दिन

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
१. पहले मनुष्य बनो	...	१
२. अपना चरित्र गढ़ो	...	४
३. हमारी प्राचीन राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली	...	१०
४. परा और अपरा विद्या	...	१३
५. शिक्षा का सही लक्ष्य	...	१८
६. स्वयं को सिखाओ तथा अपने देशवासियों की सहायता करो	...	२२
७. चरित्र-गठन और राष्ट्र-निर्माण	...	२९
८. राष्ट्र के पुनर्गठन के लिए सन्देश	...	३२
९. गलत आदर्श	...	३९
१०. स्वामीजी के पीछे चलो-१	...	४१
११. स्वामीजी के पीछे चलो-२	...	४५
१२. अस्पताल को मन्दिर के समान देखो	...	४९
१३. श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर और सेवा का आदर्श	...	५०
१४. स्वामीजी की आँखों से देखो	...	५५
१५. सेवा का आदर्श	...	५९
१६. राष्ट्र के लिए हमारी विरासत	...	६४
१७. संन्यासी तथा समाज	...	६९

पहले मनुष्य बनो*

जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटे, तो बहुत से लोगों ने उनसे अनुरोध किया कि वे राजनीति में भाग लें और इस प्रकार भारत की पराधीनता को दूर करें। उत्तर में स्वामीजी ने कहा – ठीक है, मान लो कि मैं कल भारत को स्वतंत्र कर देता हूँ, तो क्या तुम उस स्वतंत्रता की रक्षा कर सकोगे ? सारे देश में ऐसे लोग कहाँ हैं, जो ऐसा कर सकें ? इस तरह स्वामीजी ने हमें समझा दिया कि जब तक हमारे पास मनुष्य नही हैं, तब तक न तो कुछ किया जा सकता है, न कुछ पाया। आज के सन्दर्भ में हम स्वामीजी के इस कथन का मर्म अच्छी तरह समझ सकते हैं। आज देश में इतनी समस्या क्यों है ? – इसलिए कि हमारे पास मनुष्य नहीं हैं। यदि देश में उचित मनुष्य होते, तो हमें कुछ कठिनाई न होती। तब तो राजनीति, शैक्षणिक या अन्य सभी प्रकार के आदर्श हम सहज ही में उपलब्ध कर ले सकते। उचित मनुष्य के अभाव में हम किसी प्रकार की उन्नती नहीं कर सकते। अच्छा, हमें मनुष्य कैसे मिले ? क्या संसद के कानून बनाने से? ऐसा कभी सम्भव नहीं। केवल धर्म के माध्यम से ही मनुष्य का निर्माण हो सकता है।

इसीलिए तो स्वामीजी ने हमारा आह्वान करते हुए कहा कि अपनी अन्तःस्थ आत्मा को प्रबुद्ध करो और आत्मशक्ति को जागृत कर कार्य में कूद पड़ो। भारत

---

* यह व्याख्यान अखिल भारत विवेकानन्द युवा महामण्डल, अगरतला, त्रिपुरा द्वारा आयोजित महती जनसभा को, जिसमें २०,००० से भी अधिक लोग उपस्थित थे, १४.२.१९७६ को बँगला में सम्बोधित किया गया था।

के नवनिर्माण के लिए तुम्हें धर्म और कर्म का सहारा लेना ही पड़ेगा। धर्म की सहायता के बिना भारत का उत्थान नहीं हो सकता। वह देश का प्राणकेन्द्र है। यदि उसकी ओर ध्यान दिया गया, तो बाकी सब कुछ अच्छा ही होगा।

जब से स्वामीजी ने शिकागो के विश्व-धर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म पर व्याख्यान दिया, वास्तव में तभी से भारत ने जागना शुरू किया। हिन्दू धर्म का सन्देश सुनकर सारा अमेरिका मंत्रमुग्ध हो गया। समूचे विश्व ने देखा कि भारत मृत नहीं है, वह सोया भी नहीं है, बल्कि जीवित है। और केवल जीवित ही नहीं बल्कि अब वह सारे विश्व को जीत लेगा। पर प्रश्न यह है कि किसके द्वारा जीतेगा ? अण्वस्त्र के सहारे ? . . . नहीं, बल्कि अपने शान्त सौहार्द के सन्देश द्वारा, जैसा कि स्वामीजी ने कहा। अपने इस आदर्श के द्वारा भारत समस्त भेदभावों को दूर कर सारी दुनिया को एक करेगा।

धर्म हमारे जीवन का आधार है। स्वामीजी ने बताया कि यदि हम अपना धर्म-जीवन स्वस्थ रखें, तो सब कुछ ठीक चलेगा। जैसा कि हम देखते ही हैं, स्वामीजी के प्रयासों से पहले हमारे धार्मिक जीवन में नवजागरण हुआ और फिर उसके बाद राष्ट्र जीवन के अन्य सब क्षेत्रों में – शिक्षा, साहित्य, कला, अर्थनीति, राजनीति आदि में – नवजागरण के लक्षण दीख पड़ने लगे। इसीलिए स्वामीजी ने सबसे पहले, प्राथमिक आवश्यकता के रूप में, धर्म की सुरक्षा पर बल दिया। हमें अन्य बहुत सी बातों की आवश्यकता हो सकती है, पर हमें उन्हीं बातों के लिए चेष्टा करनी चाहिए, जो हमारे इन धार्मिक आदर्शों को सुरक्षित बनाये रखेंगी। हमें इस बात को नहीं भूलना है।

मैं महामण्डल के सदस्यों से कहूँगा – पहले मनुष्य बनो, काम-काज बाद में। यदि तुम पहले मनुष्य नहीं बन सकते, तो कोई भी काम सार्थक नहीं होगा। यदि तुम सीधे कर्म में लग जाओ, तो केवल आपस में झगड़ा ही करोगे, एक दूसरे को मारोगे और ऐसा ही सब करते रहोगे। इसीलिए पहले मनुष्य बनने की चेष्टा करो, धार्मिक बनने का प्रयास करो। तुम्हें चरित्र-निर्माण को प्राथमिकता देनी

होगी। इस बात को मैं विशेष बल देकर कहूँगा। स्वामी विवेकानन्द ने यही आदर्श सामने रखा था। उनका सन्देश यही था। उनकी पुकार केवल युवाओं के लिए ही नहीं थी, अपितु, प्रत्येक भारतवासी के लिए थी, जिसका आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था – आओ, तुम सब आओ और मनुष्य बनो।

मैं स्वामीजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें शक्ति दें, जिससे हम मनुष्य बन सकें और इस मनुष्यत्व से युक्त होकर बृहत्तर भारत के गठन के लिए कार्य कर सकें। स्वामीजी ने कहा है कि पृथ्वी पर ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो अब भारत का और प्रतिरोध करे। यही स्वामीजी का सन्देश है। भारत जाग उठा है और वह राष्ट्रों के विश्व-मंच पर अपना उचित स्थान अवश्यमेव प्राप्त करेगा। मैं एक बार फिर से स्वामीजी से शक्ति की प्रार्थना करता हूँ, जिससे हम देश और विश्व के लिए कार्य कर सकें तथा समस्त घृणा और ईर्ष्या-द्वेष को दूर कर 'एक विश्व' का निर्माण कर सकें।

अपना चरित्र गढ़ो*

विवेकानन्द युवा महामण्डल के इस चौदहवें शिविर का उद्घाटन करने हेतु यहाँ आकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। जैसा कि तुम लोग जानते हो, यह महामण्डल युवकों का एक अखिल भारतीय संगठन है। मेरी दृष्टि में इस प्रकार के शिविर का बड़ महत्त्व है, क्योंकि इसके माध्यम से भारत के विभिन्न भागों से युवाजनों को आकर एक साथ रहने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे वे एक दूसरे को अच्छी तरह समझ ले सकते हैं। कुछ ही दिन पहले भारत सरकार द्वारा दिल्ली में एक ऐसेही शिविर का आयोजन किया गया था। भारत के विभिन्न भागों से कुछ सौ विद्यार्थी एक शिविर में एक साथ एक महीने के लिए रखे गये थे। उन सबकी रसोई एक थी। इससे उन्हें एक दूसरे से बात करने का, विचार-विनिमय करने का और विभिन्न स्थानों के रीति-रिवाजों को समझने का अच्छा मौका लगा। यहाँ अब की बार इस शिविर में तुम लोगों की संख्या सबसे अधिक है – मैंने सुना कि लगभग पाँच सौ। उससे तुम्हें देश के गठन के लिए कार्य करने का बृहत्तर अवसर प्राप्त होगा। अभी हम लोग प्रादेशिक नीतियों और स्वार्थों द्वारा परिचालित होते हैं, समग्र देश के लिए कोई नहीं सोचता। इस प्रकार के शिविरों से तुम्हें अपने मित्रों के माध्यम से समूचे देश को समझने का मौका मिलेगा और वह तुम्हें अपने कार्यक्षेत्र में काम करने की बड़ी प्रेरणा देगा। तुम यह समझ सकोगे कि तुम्हें केवल अपने ही प्रदेश का स्वार्थ नहीं साधना है, अपितु समूचे देश के लिए तुम्हें कार्य करना है; तुम समझोगे कि तुम किसी प्रान्तविशेष के नहीं

---

* अखिल भारत विवेकानन्द युवा महामण्डल द्वारा बेलुड़ में आयोजित चौदहवें वार्षिक युवा प्रशिक्षण शिविर का दिनांक २३-१-१९८१ को उद्घाटन करते हुए दिया गया व्याख्यान।

बल्कि भारत के नागरिक हो। इसका तात्पर्य यह नहीं कि तुम अपने प्रदेश का हित अनदेखा कर दो। मुद्दे की बात यह है कि तुम्हारी रुचि 'समग्र भारत' में रहे। कारण, यदि भारत जीवित रहेगा तो तुम्हारा प्रदेश भी बचा रहेगा और यदि भारत नष्ट हो गया तो तुम्हारा प्रान्त भी नहीं बचेगा, वह कहीं का नहीं रहेगा। तुम्हारे प्रदेश का अस्तित्व भारत के एक अंग के रूप में सुरक्षित है। यदि तुम देश की उपेक्षा कर दो, तो वह उसके लिए बहुत दुर्भाग्य की घड़ी होगी। ऐसे जो शिबिर आयोजित होते हैं, वे इस मुद्दे को हमारे युवकों के सामने स्पष्ट शब्दों में रखें, जिससे वे विचारों के आदान-प्रदान के द्वारा भारत के विभिन्न भागों को समझने की चेष्टा कर सकें। इस शिबिर से यह एक बहुत बड़ा पाठ तुम लोग सीखोगे।

मुझे खुशी है कि महामण्डल चरित्र-गठन पर बल देता है। वही सबसे आवश्यक बात है। वह हमारे देश का आधार ही है। तुम बालू पर राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। उसके लिए एक ठोस आधार – एक चट्टानी नींव चाहिए, और यह केवल चरित्र के द्वारा ही हासिल किया जा सकता है। प्राचीन भारत में शिक्षा चरित्र पर बल देती थी और इससे पहले कि विद्यार्थी गुरुकुल या शिक्षाकेन्द्र छोड़कर वापस घर लौट जाएँ, अपने युवकों को देश की संस्कृति में निष्णात बना देती थी। तैत्तिरीय उपनिषद् में आचार्य बिदा ले रहे विद्यार्थियों को जो उपदेश देते हैं, वह अपूर्व है। उसमें मानवीय, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर बल दिया गया है। मैं कहूँगा कि जो युवक जीवन में प्रवेश लेंगे, उनको यह स्मरण दिला देना, यह बता देना कि जब वे जाएँगे तो उनसे क्या करने की अपेक्षाएँ रहेंगी, एक श्रेष्ठ दीक्षान्त भाषण है। अभी स्वामीजी की 'वर्तमान भारत' नामक पुस्तक से पाठ किया गया, जिसमें युवकों से अपेक्षा की गयी है कि उन्हें अपने लिए नहीं बल्कि समाज के लिए जीवित रहना है। उस युग में युवकों के मन पर इसी बात की छाप डाली जाती थी। पर अब तो सब कुछ उल्टा है। हम चरित्र पर कोई बल नहीं देते, और न इसकी चेष्टा की जाती है कि विद्यार्थी तथा इतर लोग

भारतीय संस्कृति को समझें और अपनाएँ। शिक्षा का प्रथम कर्तव्य है भारत के हर बच्चे को देश का सच्चा नागरिक बना देना। यह तभी सम्भव है, जब उसे इस प्राचीन संस्कृति में पगाया जाए, जिसके लिए भारत जीवित रहा है। पर खेद है कि ऐसा न कर बच्चों को बिलकुल उल्टी बातें सिखायी जा रही हैं। फलस्वरूप मानव-मूल्यों पर कोई बल नहीं दिया जा रहा है। बौद्धिक रूप से तुम्हें भले ही कुछ ज्ञान मिल जाए, पर उससे देश को महान् बनाने में हमें किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। तुम जरा पश्चिम की ओर तो देखो; पाओगे कि कितने बड़े-बड़े राष्ट्र विखण्डित हो रहे हैं, क्योंकि उन्होंने धर्म का परित्याग किया है। फल यह हुआ है कि उन्होंने जीवन के महान् मूल्यों की उपेक्षा कर दी है। यदि हम भारत को फिर से गढ़ना चाहते हैं, तो हमें यह भूल नहीं करनी है। तुम्हें पहले प्राचीन भारत के उन आदर्शों को खोजना चाहिए, जिनकी बदौलत देश महान् बना है और फिर उन आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए। साथ ही तुम्हें यह भी पता लगाना चाहिए कि किन आदर्शों या सिद्धान्तों ने देश की अवनति साधित की। उनसे तुम्हें बचना चाहिए। हम इसी प्रकार उस ज्ञान और तकनीक की उपलब्धि करेंगे, जिससे भारत का नवगठन साधित होगा।

हमने अभी ही सुना है, और स्वामी विवेकानन्दजी ने भी कहा है कि हमारा दरिद्रों तथा पिछड़ी जाति के लोगों के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए। मुझे यह मालूम है कि इस महामण्डल के युवकगण बड़ी सेवा करते हैं। पर मैं यह ध्यान दिलाना चाहूँगा कि यह सेवा-कार्य बहुत बिखरा-बिखरा सा है। विभिन्न केन्द्र अलग-अलग तरीके से काम करते हैं। अवश्य यह सब इसलिए होता है कि इसके सदस्य पूर्णकालिक कार्यकर्ता नहीं हैं, वे संसार में रहते हैं और अपने अवकाश के क्षणों में सेवा-कार्य करते हैं। पर यदि इन लोगों के साथ कुछ युवकों को पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में इस प्रकार प्रशिक्षित किया जा सके, जिससे वे गाँवों में निर्धन जनों को उनकी आर्थिक दशा सुधारने में विभिन्न प्रकार से सहायता दे सकें, तो वह बहुत उत्तम होगा। शेष दूसरे लोग जिनके पास उतना अवकाश नहीं है, इस

कार्य में यथाशक्ति अपनी मदद दे सकते हैं। पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं का एक दल जरूरी है। पर इसके लिए धन आवश्यक है। मुझे पूरी आशा है कि यदि प्रयास किये जाएँ, तो पैसा मिलेगा। सर्वप्रथम आवश्यकता है मनुष्य की – ऐसा मनुष्य, जो दूसरों के हित के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दे। मुझे लगता है कि इसका प्रयास किया जा सकता है, जिससे विभिन्न शाखाओं के द्वारा देश भर में संगठित रूप से कुछ काम किया जा सके। विशेष क्षेत्रों में जिन बातों की आवश्यकता होगी, वे लोग उनकी पूर्ति का प्रयास करेंगे। केन्द्र के द्वारा अपनी सब शाखाओं का इसी प्रकार मार्गदर्शन किया जाएगा। निस्सन्देह यह एक अत्यन्त कठिन काम है, पर इसके लिए प्रयास करके देखा जा सकता है। वे लोग निरक्षरता, रोग और गरीबी दूर करने के लिए सब प्रकार से चेष्टा करेंगे। पहले एक सघन योजना बना लो और फिर उसे कार्यान्वित करने का प्रयास करो। ऐसा हो सका, तो वह एक बड़ी बात होगी। यह महामण्डल इस दिशा में सार्थक विचार कर सकता है।

मैं यह नहीं कहता कि जो काम तुम कर रहे हो, वह कुछ नहीं है। तुम यह जो चरित्र-गठन का काम कर रहे हो, वह बहुत अच्छा है, क्योंकि उसके अभाव में कुछ होने-जाने का नहीं। जहाँ चरित्र है, वहाँ हाथ में लिया कोई भी काम सफल होगा। चरित्र के बिना तो दो व्यक्ति भी साथ-साथ नहीं रह सकते, वे आपस में लड़ेंगे। तुम देखोगे कि चरित्रसम्पन्न व्यक्ति ईर्ष्या और घृणा त्यागने में तथा एक संघ के रूप में एकजुट होकर प्रयत्न करने में समर्थ होते हैं।

चरित्र का निर्माण एक बड़े पैमाने पर शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। अभी महामण्डल जो कुछ कर रहा है, वह तो पाठ्यक्रम से बाहर की बात है, पर मेरी राय में उसे देश की शिक्षाप्रणाली का एक अविभाज्य अंग बना देना चाहिए। तभी कोई सन्तोषजनक परिणाम निकल सकता है। पर दुर्भाग्य की बात है कि उसकी उपेक्षा हो रही है। हाँ ! हम एक 'सिक्युलर' (धर्मनिरपेक्ष) राष्ट्र हैं, जिसका यह तात्पर्य लिया जाता है कि एक ऐसा राष्ट्र जिसमें कोई धर्म नहीं। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का सही अर्थ यह है कि वह नागरिक के धर्म की ओर दृष्टिपात

नहीं करेगा। इस दृष्टि से एक भारतीय नागरिक के रूप में धर्म की दृष्टि से तुम्हें कोई अड़चन नहीं होगी। खेद है कि उसका अर्थ एक धर्महीन राष्ट्र मानकर अर्थ का अनर्थ ही किया गया है।

तो, धर्म के बिना ये मानव-मूल्य जिनकी बदौलत कोई राष्ट्र महान् बनता है, पैदा नहीं होंगे। रोग बाहर के संसार में नहीं है, बाहरी संसार तो रोग का लक्षण मात्र है। रोग वस्तुतः भीतर – मनुष्य के अन्तःकरण में है। हम बाह्य जगत् को, भौतिक जगत् को तो सुधारने की चेष्टा कर रहे हैं, पर भीतरी जगत्, आध्यात्मिक जगत् की उपेक्षा किये दे रहे हैं। यदि मनुष्य को सही अर्थों में जीवित रहना है, तो उसके भीतर के रोग को दूर करना होगा। और यह संसद में नियम-कानून बनाकर नहीं होगा, बल्कि धर्म के द्वारा ही साधित होगा। यहाँ पर धर्म से मेरा तात्पर्य वह नहीं, जो सामान्य अर्थों में प्रयुक्त होता है – वह जो तरह-तरह के अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से लदा होता है। धर्म से मेरा तात्पर्य है वह, जो मनुष्य का, आत्मा का गठन करता है और आत्मशक्ति को प्रबुद्ध करता है। ऐसे धर्म के बिना हम महान् नहीं बन सकते। यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, जिसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने मनुष्य-निर्माण, चरित्र-निर्माण करनेवाली शिक्षा पर बल दिया है। तो शिक्षा को इसमें समर्थ होना चाहिए कि वह पहले तरुण को चरित्रसम्पन्न करे। लौकिक शिक्षा भी वहाँ पर रहेगी, पर जोर इस बात पर दिया जाएगा कि युवक भारतीय संस्कृति में पग जाएँ और अपने को चारित्रिक सम्पदा से युक्त करें। इसके बिना हमारी शिक्षा किसी काम की न होगी। वर्तमान परिस्थितियों में महामण्डल शिक्षा-प्रणाली के बाहर चरित्र-गठन का जो कार्य कर रहा है, वह मानो उस प्रणाली का परिपूरक बनकर ही ऐसा कर रहा है। यह वैसा ही है, जैसा रामकृष्ण मिशन अपने आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थी-गृहों में लड़कों को रखकर शिक्षा-प्रणाली के एक अभाव को दूर कर रहा है, क्योंकि वहाँ विद्यार्थियों को चरित्रगठन की सर्वविध शिक्षा प्राप्त होती है।

पर कई कारणों से इस प्रकार की शिक्षा देना भी कठिन है, तथापि हमें इस चुनौती का सामना करना ही होगा और यह देखना होगा कि हमारे तरुण देश की संस्कृति को आत्मसात करें और अपने चरित्र का निर्माण करें। इससे वे उपयोगी नागरिक बन सकेंगे, जिनके कन्धों पर राष्ट्र के संचालन का भार बिना किसी हिचक के न्यस्त किया जा सकेगा।

हमारी प्राचीन राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली*

मुझसे दो शब्द कहने का अनुरोध किया गया है। अभी तुम्हारे सामने जो वैदिक पाठ किया गया, वह प्राचीन काल में अध्ययन के बाद गुरुकुल छोड़कर घर वापस जानेवाले विद्यार्थियों के लिए दीक्षान्त भाषण के समान होता था। ये मंत्र यह प्रदर्शित करते हैं कि घर लौटने से पूर्व विद्यार्थियों के समक्ष आचार्य कितने उच्च स्तर के नैतिक और धार्मिक आदर्श रखते थे। विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे धर्म का मार्ग नहीं छोड़ेंगे, सत्य का त्याग नहीं करेंगे तथा स्वाध्याय, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, माता-पिता के प्रति पूज्य बुद्धि एवं आचार्यों के प्रति महान् श्रद्धा के भाव का त्याग नहीं करेंगे। उस समय शिक्षा-प्रणाली ऐसी थी कि विद्यार्थी लौकिक विद्या के साथ-साथ उस प्रकार के उच्च आदर्श भी आत्मसात करते थे, परन्तु आजकल इस प्रकार का कुछ भी दिखायी नहीं देता। विद्यार्थियों के समक्ष ये आदर्श कभी नहीं रखे जाते, न ही उनको इनके अभ्यास के लिए उत्साहित किया जाता है। शिक्षाविभाग की ओर से भी ऐसा कोई प्रयत्न नहीं है, जिससे विद्यार्थी इस महान् राष्ट्र के सांस्कृतिक आदर्शों को आत्मसात कर सकें। जब तक इन विचारों को शिक्षा-प्रणाली में पैठाया नहीं जाएगा, तब तक शिक्षा अनुपयोगी ही रहेगी। शिक्षा-प्रणाली का मूलभूत ध्येय विद्यार्थियों को इस प्रकार शिक्षित करने में निहित है, जिससे वे अपने देश की संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि बन सकें। पर इस विशिष्ट पहलू के अभाव में हमारी शिक्षा-पद्धति एकदम असफल है। वह मात्र कुछ बुद्धिवादियों को, या क्या यह कहूँ कुछ बौद्धिक पशुओं को, पैदा करती है, जो समाज में एक दूसरे के साथ लड़ने-भिड़ने में ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर

---

* रामकृष्ण मिशन विद्यालय, नरोत्तमनगर, अरुणाचल प्रदेश में विद्यार्थियों को दिनांक ३१-१०-१९७९ को दिया गया सम्बोधन।

देते हैं। समूचे देश में ऐसा ही गुलगपाड़ा चला हुआ है और यह हमारी शिक्षा का ही फल है।

जब तक पूरी प्रणाली को बदला नहीं जाता, देश के लिए कोई आशा नहीं है। जो लोग शिक्षाकार्य में रत हैं, उन सबका कर्तव्य है कि वे देखें जिससे शिक्षा के ये आदर्श बदले, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन किये जाएँ तथा यह भी कि कोई हड़ताल आदि न हों और विद्यार्थी शान्तिपूर्वक अध्ययनकार्य में लगे रह सकें।

आज के राजनैतिक दल विद्यार्थियों को उनके शिक्षासंस्थानों से निकालकर अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए लड़ने में लगाते हैं, जिससे राजनैतिक जगत् में उनका वर्चस्व बना रहे। यदि हम इस देश को एक बार फिर से महान् बनाना चाहते हैं, तो यह सब बन्द करना होगा, अन्यथा मुझे तो कोई आश्चर्य न होगा कि यदि इस प्रकार की शिक्षा से हमारी आजादी जोखिम में पड़ जाए। अतएव हमें शिक्षा के अपने प्राचीन आदर्शों और तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली की ओर लौटना होगा और यह देखना होगा कि युवक शिक्षालयों से निकलने के पहले धर्म के गुणों और नैतिक मूल्यों को आत्मसात कर लें; जिससे वे सही मायने में मनुष्य बन सकें तथा अपने परिवार, समाज और राष्ट्र की जिम्मेदारियाँ अपने कन्धों पर उठा सकें। शिक्षा का यही ध्येय होना चाहिए।

अतएव यहाँ के अध्यापकों को यह चेष्टा करनी चाहिए, जिससे लड़के इन श्रेष्ठ मानवीय गुणों को अपना सकें। यद्यपि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में इस प्रकार की शिक्षा पाठ्यक्रम के बाहर की गतिविधियों के रूप में ही दी जा सकती है, फिर भी अध्यापक-मण्डल का इस दिशा में सचेष्ट योगदान होना चाहिए। हम अपनी समस्त शैक्षणिक संस्थाओं में इसी बात की चेष्टा कर रहे हैं, जिससे विद्यार्थी शान्तिपूर्वक अपना अध्ययन कर सकें और अपने बाद के जीवन में धर्मनिष्ठ, ईमानदार और सच्चे रह सकें तथा आशु-धन या सत्ता या इसी प्रकार का कुछ प्राप्त करने के लिए विभिन्न हथकण्डों के चक्कर में न पड़े। आज ये हथकण्डे ही

देश के लिए बड़े कलंक हैं और जब तक इनको दूर नहीं किया जाता, तब तक देश के लिए कोई आशा नहीं है।

शिक्षकों और अध्यापकों पर बहुत बड़ा दायित्व न्यस्त है। उन्हें प्राचीनकाल के ऋषियों के समान विद्यार्थियों को नैतिक प्रेरणा देने में समर्थ होना चाहिए। आज भी नैतिक मूल्यों की इस सब गिरावट के बावजूद, यदि कोई कुशल अध्यापक है जो अपने विषय में पारंगत है, बड़ा-सद्गुणी है और पवित्र मनवाला है, तो विद्यार्थी उसका आदर करते हैं। वे उसे नहीं सताते। भले ही वे हड़ताल पर जाते हों, बाहर और दूसरी कक्षाओं में सब प्रकार के फसाद खड़े करते हों, पर उस अध्यापक की कक्षा में कोई गड़बड़ी नहीं करते। यह प्रदर्शित करता है कि विद्यार्थी ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता अनुभव करते हैं। खेद है कि बहुत से अध्यापक विद्यार्थियों की इस कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते, इसीलिए देश की शैक्षणिक संस्थाओं में इतना विक्षोभ मचा हुआ है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें इस शिक्षा-प्रणाली को बदलने की शक्ति दें, जिससे देश प्राचीन नैतिक मूल्यों की ओर जा सके और अपना नव-निर्माण कर ले सके।

❖ ❖ ❖

परा और अपरा विद्या*

हम लोग 'रामकृष्ण मिशन विद्यार्थी गृह' (Students' Home) की प्लाटिनम जयन्ती मनाने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। यद्यपि मैं भी इस संस्था के साथ एकदम प्रारम्भ से, यानी सन् १९१६ से, जब मैं यहाँ रामकृष्ण मठ में एक ब्रह्मचारी था, जुड़ा हुआ हूँ, तथापि इस संस्था के सम्बन्ध में मैं विशेष कुछ नहीं कहूँगा। मैं तो उस शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहूँगा जो आज हमारे देश में छायी हुई है।

हम जिधर भी देखें – चाहे राजनीति का क्षेत्र हो या अर्थनीति का, चाहे सामाजिक सम्बन्धों का अथवा शिक्षा का – हमें सर्वत्र एक निराशाजनक स्थिति ही दिखायी देती है। और जहाँ तक शिक्षा के क्षेत्र का प्रश्न है, स्थिति सबसे खराब है। इस देश में यह सब विभ्रान्ति को हम देखते हैं, उसका कारण है शिक्षा-प्रणाली में हमारी मूलभूत भूल। लड़के उसी प्रकार बढ़ते हैं, जैसा उन्हें सिखाया जाता है। और यदि उस पद्धति में ही खराबी हो, तो वह दोष सबमें ही, जैसे जैसे वे बढ़ते हैं, मिलेगा। इसके लिए हम उन्हें दोष नहीं दे सकते। हम लोग आज भी बहुत कुछ उसी यूरोपीय शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं, जो हम पर अँगरेजों के द्वारा जब से वे यहाँ आये तब से लादी गयी थी। वह उनकी पश्चिमी सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में भले ही उपयोगी रही हो, पर हमारे लिए तो वह एकदम उपयोगी नहीं थी। न्यूनाधिक मात्रा में आज भी उस प्रणाली का ही अनुसरण किया जा रहा है। शिक्षा-प्रणाली के उद्देश्यों तथा राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षाओं के बीच किसी प्रकार का ताल-मेल नहीं है। शताब्दियों से चरम सत्य का साक्षात्कार ही

---

* रामकृष्ण मिशन स्टूडेण्ट्स् होम, मद्रास में दिनांक १५-२-१९८१ को अँगरेजी में दिया गया व्याख्यान।

राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा रही है। समाज की संरचना को इस प्रकार परिवर्तित और नव-नियोजित किया जाता रहा, जिससे सभी लोग कुछ सीमा तक संसार का अनुभव भी ले लें और लक्ष्य की प्राप्ति भी कर लें। शिक्षा का भी समायोजन उसी के अनुरूप किया जाता रहा। परा विद्या पर तब बड़ा बल दिया जाता। ऐसी बात नहीं थी कि अपरा विद्या को तिरस्कृत या उपेक्षित किया गया था, क्योंकि भारत उस युग में अपरा विद्या के क्षेत्र में भी आगे बढ़ा हुआ था, पर बल परा विद्या पर – चरित्र निर्माण, नैतिकता और ऐसी ही सब बातों पर दिया जाता। इससे लड़कों के व्यक्तित्व का समुचित विकास होता, जिससे वे राष्ट्र द्वारा अभिलाषित लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होते। आजकल की तरह तब विश्वविद्यालय और महाविद्यालय नहीं थे। तब लड़कों को ऐसी क्रियाओं के माध्यम से जाना पड़ता, जिनसे उनका चरित्र गठित होता तथा मन पवित्र और सुदृढ़ बनता। उन्हें अपने विद्यार्थी-जीवन में कड़े ब्रह्मचर्य-व्रत एवं ऐसे ही कुछ नैतिक नियमों का पालन करना पड़ता। ये सब उपाय उनके मन के गठन में सहायक होते। आखिर मन ही तो ऐसा औजार है, जिसके द्वारा मनुष्य जानता है और यदि वही दोषपूर्ण हो, उसे यदि ठीक ढंग से न रखा जाए, तो मन के लिए ज्ञान का संग्रह करना कठिन हो जाएगा।

जब हम स्वामी विवेकानन्द की बात पढ़ते हैं, तो हम पाते हैं कि उनका मन इतना अच्छी तरह सधा हुआ था कि वे चुटकी बजाते ही ग्रन्थ के ग्रन्थ पढ़ जाते। एक बार जब वे भ्रमण कर रहे थे, उनके एक गुरुभाई साथ थे। वे एक ग्रन्थालय के समीप तब रह रहे थे। स्वामीजी ने अपने गुरुभाई से ग्रन्थालय से कुछ पुस्तकें ले आने के लिए कहा। प्रतिदिन गुरुभाई ग्रन्थालय जाते और स्वामीजी द्वारा बताये गये दो-एक ग्रन्थ लाते और दूसरे ही दिन उन पुस्तकों को वापस कर और कुछ दूसरी पुस्तकें ले आते। ग्रन्थपाल ने सोचा, "यह क्या; इनमें से एक ही पुस्तक के अध्ययन में महीनों लग जाएँगे और यहाँ तो हर दिन किताबें लौटायी जा रही हैं! यह सब क्या मात्र दिखावा है ?" उसने अपनी यह शंका स्वामीजी के गुरुभ्राता के निकट प्रकट कर दी और गुरुभाई ने जाकर यह स्वामीजी को

बता दी। इस पर स्वामीजी एक दिन स्वयं ग्रंन्थालय गए और उन्होंने ग्रन्थपाल से कहा कि आपने मुझे पढ़ने के लिए जितनी पुस्तकें दीं, उनमें से किसी भी में से आप मुझसे प्रश्न पूछ सकते हैं। ग्रन्थपाल ने तब स्वामीजी से प्रश्न पूछे और स्वामीजी ने सबके यथोचित उत्तर दे दिये। स्वामीजी बोले, "देखिए, आप लोग शब्द पढ़ते हैं – जब आप कोई पुस्तक लेते हैं, तो उसे शब्दशः पढ़ते हैं। पर मैं ऐसा नहीं पढ़ता, मैं पृष्ठतः पढ़ता हूँ – मैं पृष्ठ के प्रथम और अन्तिम कुछ शब्दों को पढ़ा करता हूँ, इससे मुझे पता चल जाता है कि उस पृष्ठ मे क्या कहा गया है।"

अतएव, जब मन को, स्मृति को एक विशेष पद्धति से विकसित किया जाता है, तब वह ज्ञान के स्पष्टतः आकलन में हमारा सहायक होता है। हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में मन के ऐसे प्रशिक्षण का अभाव है। यही परा विद्या और लौकिक शिक्षा के बीच का अन्तर है। परा विद्या की उपेक्षा ही शिक्षा-पद्धति की समस्त बुराइयों की जड़ है, उसी के कारण हम आज इतना दिग्भ्रम देखते हैं।

फिर, इस पर है राजनैतिक दलों की खींचतान। उनके द्वारा अपने दलीय स्वार्थ की सिद्धि के लिए विद्यार्थियों को अपनी ओर खींचना विद्यार्थी-समुदाय पर बड़ा खराब प्रभाव डालता है। इसके कारण सारे देश में शिक्षा-प्रणाली की दुर्गती हुई है। उत्तर भारत के एक विश्वविद्यालय में तो सन् १९७८ में ली गयी परीक्षाओं का परिणाम अभी तक घोषित नहीं हुआ है। फलतः उसके बाद की परीक्षाओं के परिणाम भी, भले ही तैयार हैं, घोषित नहीं किये गये हैं, क्योंकि पूर्व वर्ष की परीक्षाओं के परिणाम अघोषित हैं। यह हमारी शिक्षा-पद्धति का ढर्रा है। जब तक शिक्षा के आधारभूत दर्शन में परिवर्तन नहीं किया जाता और हम परा विद्या को – चरित्र निर्माण और मनोनिग्रह आदि को – महत्त्व नहीं देते, तब तक एक महत्तर भारत का निर्माण बड़ा कठिन है।

एक बार एक विज्ञान के प्राध्यापक हमारे ही देश के किसी महाविद्यालय में प्रयोगशाला देखने आये। उस विभाग के प्रभारी अध्यापक उन्हें प्रयोगशाला दिखाने ले गये। जब वे वहाँ पर आये, जहाँ बहुत से अणुवीक्षक यन्त्र रखे हुए थे,

तो उन्होंने एक में से देखने की चेष्टा की। पर उन्हें स्पष्ट कुछ दिखा नहीं। तब उन्होंने अणुवीक्षक यन्त्र के लेंस (ताल) को निकाला, अपने रूमाल से उसे साफ किया और उसे जमाकर फिर से देखा। अब उन्हें सब कुछ स्पष्ट दिख रहा था। अणुवीक्षक यन्त्र एक ऐसा औजार है, जिसके सहारे हम वस्तुओं को देखने और उनका ज्ञान पाने में समर्थ होते हैं। यदि उसे साफ न रखा जाए, उसे गन्दा रहने दिया जाए, तो जिस वस्तु की जाँच की जा रही है उसके सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी कैसे मिलेगी ? लेंस को साफ रखना होगा। इसी प्रकार जब नैतिकता और सदाचार का पालन करते हुए मन को साफ और सबल बनाया जाता है, तभी मन वस्तुओं के सूक्ष्म सत्य को सहज रूप से पकड़ने में समर्थ होता है। प्राचीन भारत में हमें ऐसी ही शिक्षा प्राप्त होती थी, जो आज हमें अनुपलब्ध है।

इस प्रकार के 'विद्यार्थी-गृह' का एक बड़ा लाभ यह है कि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जिस शिक्षा का अभाव है, उो यहाँ दिया जा सकता है, जब विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं। और वह किया भी जा रहा है। तभी तो हम इतनी बड़ी संख्या में मेधावी लड़कों को यहाँ से निकलकर राष्ट्र के जीवन में महत्त्वपूर्ण पदों पर अवस्थित होते देख रहे हैं। और यह केवल इसी 'विद्यार्थी-गृह' के परिप्रेक्ष्य में नहीं, बल्कि उन समस्त आवासीय शिक्षा-संस्थानों के 'विद्यार्थी-गृहों' के सन्दर्भ में भी सत्य है, जिन्हें हम लोग चला रहे हैं। यह नहीं कि हमने भौतिक पक्ष की उपेक्षा की हो, क्योंकि हमारे यहाँ के लड़के विभिन्न प्रदेशों के शिक्षा-मण्डलों तथा विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में जिस प्रकार उच्च स्थानों पर अधिकार करते रहे हैं, वह प्रदर्शित करता है कि उनका भौतिक पक्ष कितना सबल है। पर वहाँ बल परा विद्या पर दिया जाता है। जब तक वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को चरित्रवान् पुरुषों के निर्माण में सक्षम नहीं बनाया जाता – ऐसे पुरुष, जो देश की समस्याओं को सुन्दर रूप में सुलझा सकें, तब तक देश के लिए कोई आशा नहीं है।

अतएव जो लोग देश की शिक्षा-प्रणाली से जुड़े हुए हैं, उनसे मैं निवेदन करता हूँ कि वे यह देखें कि परा विद्या का यह आदर्श हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली

में समायोजित हो जाय। श्रीरामकृष्ण इस प्रयत्न में हमारी सहायता करें, वे इस संस्थान पर, यहाँ के विद्यार्थियों और आचार्यों पर तथा उन सब पर अपने आशीर्वाद का वर्षण करें, जो इस संस्थान से जुड़े हुए हैं। सभी लोग उनके आशीर्वाद के भागी हों यही उनके श्रीचरणों में मेरी साग्रह प्रार्थना है।

शिक्षा का सही लक्ष्य*

शिक्षा का तात्पर्य बच्चों को पढ़ने, लिखने और कुछ अंकगणित का ज्ञान देना मात्र नहीं है, न ही किसी विशेष विषय की जानकारी प्रदान करना है, अपितु उसका अर्थ है बच्चों की सहायता करना, जिससे वे अज्ञान और अपूर्णता को लाँघ सकें तथा उस समाज के आदर्शों के अनुसार परिपक्व हो सकें जिसमें बच्चे ने जन्म लिया है। जब हम कहते हैं कि बच्चा परिपक्व हो गया, तो उसका अर्थ यह है कि वह भीतर निहित कुछ गुणों को प्रकट करता है या कि अपनी सुप्त पूर्णता को कुछ मात्रा में अभिव्यक्त करता है। हमारे व्यक्तित्व के दो पहलू हैं – एक है यथार्थ और दूसरा आभास। आभासवाला पक्ष ही समस्त लौकिक विद्याओं के अध्ययन का विषय है। उसका तो अध्ययन किया जा सकता है, पर जो यथार्थवाला पक्ष है, वह अध्ययन के दायरे में नहीं पड़ता, क्योंकि वह इन्द्रियों के अतीत है। भीतर का यह यथार्थ मनुष्य पूर्ण है और उसे आत्मा, ईश्वर आदि नामों से पुकारा गया है। व्यक्ति इस आत्मा के साथ तादात्म्य का जितना अनुभव करेगा, वह उतना ही परिपक्व या पूर्ण बनेगा। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहते हैं – 'मनुष्य में पहले से विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति'। जब हम अपने जीवन में इस पूर्णता को, जो हमारी आत्मा का ही स्वरूप है, अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं, तब हम शिक्षा के लक्ष्य को पा लेते हैं। इस दृष्टि से देखें तो श्रीरामकृष्ण भले ही निरक्षर थे, पर पूरी तरह शिक्षित थे, जबकि हम साक्षर तो हैं लेकिन अशिक्षित हैं। अपनी समस्त अपूर्णताओं, जिनके कारण संसार का यह सारा दुःख-कष्ट हमें हो रहा है, के होते हुए भी कैसे कह सकते

---

* रामकृष्ण मिशन सारदापीठ, बेलुड़ मठ के अन्तर्गत शिक्षण मन्दिर में दिनांक १२-१-१९६६ को बँगला में दिया गया व्याख्यान।

हैं कि हम शिक्षित हैं ? वर्तमान शिक्षा-पद्धति के इसी पक्ष पर बल देने के लिए श्रीरामकृष्ण ने वह ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, जिसे हम आधुनिक अर्थों में शिक्षा कहते हैं।

आज की शिक्षा-प्रणाली का दोष यह है कि उसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं। एक चित्रकार जब चित्र बनाता है, तो उसे अपने द्वारा बनाये जानेवाले चित्र की स्पष्ट धारणा रहती है। उसी प्रकार जो शिल्पी एक पाषाणखण्ड से मूर्ति बनाता है उसे इसका स्पष्ट ज्ञान रहता है कि वह पत्थर को छेनी से काटकर कौन सी मूर्ति पैदा करेगा। किन्तु आज के शिक्षक को लक्ष्य का कोई स्पष्ट बोध नहीं होता, या यह कहें कि उसके सामने कोई लक्ष्य ही नहीं होता, जिसको पाने के लिए वह बच्चे को शिक्षा देता हो। हम समाचार-पत्रों में अपनी शिक्षा-प्रणाली पर आयोजित गोष्ठियों की बात पढ़ते हैं और यह भी कि इस शिक्षा-प्रणाली को फिर से गठित करने के लिए अब तक कई समितियाँ बनती रहती हैं, पर वह सब केवल पाठ्यक्रम को केन्द्रित करके ही किया जाता है, प्रणाली के आधारभूत दोष पर कोई चर्चा नहीं करता। वे केवल लौकिक या अपरा विद्या पर ही बल देते हैं और परा विद्या का कोई उल्लेख नहीं करते। वे परा विद्या को आवश्यक ही नहीं समझते। इसलिए लक्ष्य बच्चे को एक 'कैरियर' अथवा जीविकोपार्जन हेतु शिक्षा देने में ही सिमट जाता है। पर वस्तुस्थिति यह है कि परा विद्या के बिना किसी को भी सही मायने में शिक्षित नहीं कहा जा सकता।

फिर, अपरा विद्या में भी हम क्षेत्रविशेष में विशेष योग्यता अर्जित करने की चेष्टा करते हैं। एक बच्चे को नौवीं कक्षा के स्तर पर ही विषय चुनने के लिए कहा जाता है, जिसके द्वारा वह आगे चलकर अपनी जीविका का उपार्जन कर सकेगा। एक बार वह चुनाव हो गया कि उस विशिष्ट विषय से सम्बन्धित सारा ज्ञान ही उसके बौद्धिक आहार का मुख्य उपादान बन जाता है और बाकी सब कुछ एक ओर ठेल दिया जाता है। हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बच्चे को एक विशिष्ट क्षेत्र में तो विशेषज्ञ बना देती है, पर उसे वह उदार शिक्षा प्रदान नहीं

करती, जिसके बल पर वह सही अर्थों में मनुष्य बन सके और अपनी अतीत की सांस्कृतिक विरासत का अधिकारी कहला सके। एक ऐसे शिक्षित भारतीय की कल्पना करो, जो अभियांत्रिकी के किसी क्षेत्र में तो विशेषज्ञ है पर जिसे रामायण, महाभारत या कालिदास की किसी कृति अथवा अतीत या वर्तमान के साहित्यकारों की किसी रचना से परिचित होने का कोई अवसर नहीं मिला है। क्या ऐसा व्यक्ति सच्चा भारतीय हो सकता है ? सच्चा भारतीय होने की बात तो दूर, वह मनुष्य होने की भी पात्रता नहीं रखता।

हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धति में दूसरा दोष यह है कि उसमें ज्ञान-प्राप्ति के औजारस्वरूप मनोयंत्र के प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में मन के संस्कार, उसके नियंत्रण और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ध्यान, एकाग्रता और नैतिक पवित्रता के अभ्यास द्वारा उसे ज्ञान-प्राप्ति का उपयुक्त यंत्र बनाया जाता था। शिक्षा के केन्द्र जनपदों से बहुत दूर होते थे और मन के संस्कार के लिए उपयोगी वातावरण प्रस्तुत करते थे। यह निर्विवाद है कि स्वस्थ बौद्धिक जीवन के लिए एकान्त और गहन ध्यान नितान्त आवश्यक तत्त्व हैं।

एक शिशु को जिस परिवेश में रखा जाता है, वह वहाँ के स्वभाव, आदतों और गुणों को आत्मसात् करता है। अतएव यदि तुम चाहो कि वह एक विशिष्ट दिशा में विकसित हो, तो तुम्हें घर और विद्यालय में ऐसा वातावरण देना होगा, जो उसके विकास में सहायक हो। यदि तुम चाहते हो कि एक पौधा सुन्दर वृक्ष के रूप में परिणत होकर सुरभित पुष्प और स्वादिष्ट फलों को जन्म दे, तो तुम्हें उसे उचित खाद, जल और प्राकृतिक वातावरण प्रदान करना होगा, जो एक स्वस्थ वृक्ष के रूप में उसके विकसित होने में सहायता प्रदान करे। एक शिशु के विकास के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। इस प्रकार माता-पिता और अध्यापकों पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी इस बात की आ जाती है कि वे वैसा जीवन बिताएँ जैसा वे चाहते हैं कि बच्चा बड़ा होने पर बिताए। प्राचीन गुरुकुलों में आचार्यगण

उन्नतचरित्र व्यक्ति हुआ करते थे, विद्यार्थी उनके चरित्र और वर्तनी से प्रभावित और प्रेरित होते थे। यद्यपि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है, तथापि शिक्षक पाठ्यक्रम के बाहर सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रकार की गतिविधियाँ आयोजित करके तथा आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ हमारे राष्ट्रीय आदर्शों का पाठ पढ़ाकर शिक्षा-पद्धति में निहित दोष को कुछ कम कर सकते हैं। अध्यापक को चाहिए कि वह अपने निवास को एक आश्रम बना ले और प्राचीन ऋषियों की भाँति जीवन यापन करे, जिससे गाँव या शहर के लोग उसके पास मार्गदर्शन और सान्त्वना पाने के लिए जा सकें तथा विद्यार्थी भी उसे अपना मित्र, सलाहकार और कठिनाइयों में रक्षा करनेवाले एक गुरुजन के रूप में देख सकें।

स्वयं को सिखाओ तथा अपने देशवासियों की सहायता करो*

आज एक प्रकार से हम लोगों के लिए 'thrice blesssed day' (त्रिवार पुण्य दिवस) है, क्योंकि आज से इस प्रतिष्ठान की रजत-जयन्ती का शुभारम्भ हो रहा है, फिर आज ही ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की संगमर्मर-मूर्ति की मन्दिर में प्रतिष्ठा हुई और फिर आज स्वामी तुरीयानन्दजी का जन्म-दिवस भी है।

इस प्रतिष्ठान की गतिविधियों के बारे में आपने सुना है। उसमें कहा गया है कि यहाँ पर स्वामीजी (विवेकानन्दजी) के आदर्शों के अनुसार छात्रों को शिक्षा देने की चेष्टा की जा रही है। हम लोग आजकल चारों ओर केवल अन्धकार ही देख रहे हैं। समाज के सभी स्तरों पर सत्यता का अभाव दिखायी दे रहा है, सर्वत्र चोरबाजारी और कालाधन से मानो समाज भर भर गया है।

हमारे देश की यह दुरवस्था क्यों है ? इसलिए कि 'मनुष्य' नहीं हैं। मनुष्य क्यों नहीं हैं ? पहले तो भारतवर्ष में कितने मनीषी लोग थे, बड़े बड़े त्यागी महापुरुष थे, बड़े बड़े सम्राट थे, पर आज ऐसी अवस्था क्यों हो गयी है ? उत्तर में कहूँगा कि मूल में ही गड़बड़ी है ! हम लोग जो शिक्षा पाते हैं, उससे किसी प्रकार 'मनुष्य' तैयार नहीं हो सकता – चरित्रवान् मनुष्य नहीं तैयार हो सकता। जैसा कि बाईबल में कहा है – Do men gather grapes of thorns, or figs of thistles ? – 'क्या काँटो में अंगूर फलते हैं या कटीली झाड़ियों में

---

* रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया की रजतजयन्ती के अवसर पर दिनांक ८-१-१९८२ को बँगला में दिया गया व्याख्यान

गूलर मिलते हैं ?'

हम लोग लड़के-लड़कियों को जैसी शिक्षा देंगे, वे लोग ठीक वैसे ही गठित होंगे और बड़े होने पर उनकी बुद्धि का विकास उसी प्रकार होगा। अतएव यदि हम लोग वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को अपने अनुरूप न ढल सकें और जैसा अँगरेज बना गये थे वैसा ही रहने दें, तब तो अवस्था उसी प्रकार बनी रहेगी।

स्वामीजी ने एक बार कहा था – शिक्षा कैसी होनी चाहिए ? चरित्र-गठन ही शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। छात्रों के चरित्र-गठन की ओर ध्यान देना होगा। फिर उन्होंने कहा था – पहले हमलोगों के पास ज्ञान की जो सब शाखाएँ थीं, आज उन सबकी शिक्षा हमें देनी होगी। उसके साथ अँगरेजी भी सीखनी होगी, क्योंकि अँगरेजी भाषा के द्वारा हम लोग विश्व के साथ वार्तालाप कर सकते हैं। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिक (तकनीकी) विद्या भी आवश्यक है। क्यों ? – इसलिए कि प्रौद्योगिकी के द्वारा हमें अपने उद्योग खड़े करने होंगे। ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिससे उद्योग-धन्धों का सहारा लेकर हमारी गरीब जनता अपने पेट की आग बुझा सकें।

पर मूल बात है चरित्र-गठन। वह क्या यों ही हो जाता है ? क्या व्याख्यान देने या संसद द्वारा कोई नियम-कानून बना देने से चरित्र-गठन हो जाता है ? चरित्र-गठन के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। हमारी प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में दो विभाग थे। एक थी अपरा विद्या और दूसरी, परा विद्या। परा विद्या के द्वारा भारतवर्ष के श्रेष्ठ आदर्श की शिक्षा दी जाती, जो सहस्रों वर्ष से चली आ रही है, और वह है मोक्ष या धर्म। मोक्ष ही मानव-जीवन का उद्देश्य है। शिक्षा-क्षेत्र में भी उसकी ओर हमारी दृष्टि होनी चाहिए। पूर्वकाल में लड़के-लड़कियों को विविध प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। उसमें धर्म या नीति की शिक्षा को स्थान मिलता था। इसे हम नैतिक गुणों का अनुशीलन कह सकते हैं। उन लोगों को इस सबका पालन करना पड़ता था। उसी से उनका चरित्र गढ़ता। पर आज बस यही तत्त्व हमारी शिक्षा में सम्मिलित नहीं है। फलस्वरूप जिस प्रकार की शिक्षा दे रहे हैं,

तदनुरूप परिणाम मिल रहा है। राष्ट्र के उद्देश्य, राष्ट्र के आदर्श के साथ जिस शिक्षा का कोई सम्बन्ध न हो, वह शिक्षा वस्तुतः शिक्षा ही नहीं है। शिक्षा का मतलब क्या थोड़ा लिखना-पढ़ना सीख लेना मात्र है या और कुछ ? शिक्षा का तात्पर्य है, जो लड़के-लड़कियाँ पढ़ने विद्यालय जाते हैं, उन्हें देश के आदर्श के अनुरूप गढ़ लेकर यथार्थ भारतीय नागरिक बना देना। यदि यह न हो, तो शिक्षा से भला क्या लाभ ? आदर्श शिक्षा के अभाव में ही आज हमारी ऐसी दुरवस्था है।

हमारे स्कूल-कालेजों के पाठ्यक्रम में यह सब कुछ नहीं है। हमारे स्कूल-कालेज अभी विविध प्रकार की असुविधाओं में से गुजर रहे हैं। अभी रामकृष्ण मिशन स्वामीजी के भावादर्श को पूरी तरह से प्रयोग में नहीं ला पा रहा है। किन्तु उसके प्रयोग की जो कुछ भी थोड़ी सी सुविधा उपलब्ध है, उसके लिए हम लोगों ने ये छात्रावास और आवासिक विद्यालय खोले हैं। इससे छात्र सब एक साथ रहते हैं। शिक्षक भी छात्रों के साथ रहते हैं। इससे विद्यालय का जो पाठ्यक्रम है, उसके अतिरिक्त भी कुछ अधिक शिक्षा हम लोग छात्रों को दे सकते हैं। इसीलिए अनेक स्थानों पर हम लोगों ने आवासिक विद्यालय खोले हैं। यहाँ पर आवासिक विद्यालय होने के कारण आज ठाकुर की संगमर्मर-मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। इस विद्यालय के साथ, पढ़ाई-लिखाई के साथ मन्दिर का क्या सम्बन्ध है यह प्रश्न उठ सकता है। मन्दिर के साथ सम्बन्ध यह है कि इस मन्दिर के रहने से समस्त छात्रों के जीवन पर उसका प्रभाव पड़ेगा – वे लोग प्रतिदिन श्री ठाकुर, श्री माँ और स्वामीजी को देखेंगे और यह स्मरण करेंगे कि वे किस प्रकार अपना जीवन बिता गये तथा उपदेश दे गये। उनका भाव इन छात्रों के मन पर अपनी छाप अंकित कर सके इस हेतु मन्दिर की आवश्यकता है। वह दूसरे किसी विद्यालय में सम्भव नहीं। भले ही यहाँ पर पाठ्यक्रम में धर्म का भाव प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, तथापि छात्रगण वह पा ले रहे हैं।

बाहर के स्कूलों में छात्रों का शिक्षक के साथ विशेष कोई सम्पर्क नहीं रहता। लड़के समय पर आते हैं, दो घण्टे पढ़ते हैं, फिर चले जाते हैं। शिक्षक ने

एक घण्टा पढ़ाया, फिर चले गये। उसके बाद कुछ नहीं। पर पूर्वकाल में ऐसा नहीं था। शिक्षक के साथ छात्रों का पिता-पुत्र के समान सम्पर्क रहता था। एक दूसरे के प्रति श्रद्धा का भाव रहता। वह श्रद्धा तो आजकल है ही नहीं। घेराव हो रहा है, और भी जाने कितना क्या हो रहा है। वह श्रद्धा रहे कैसे ? उस श्रद्धा के लिए जो गुण आवश्यक है, वही नहीं है। हमारे यहाँ आवासिक विद्यालय होने से शिक्षक, छात्र, साधु सब एक साथ रहते हैं। फलस्वरूप उनके भीतर एक दूसरे के लिए श्रद्धा का भाव, प्रेम का भाव पैदा होता है। इससे कुछ अच्छा फल प्राप्त होता है।

इसीलिए जहाँ भी हमारे इस प्रकार के आवासिक विद्यालय हैं, वहाँ स्वामीजी शिक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ कह गये हैं, उसका कुछ तो हम लोग अवश्य प्रयोग में ला सक रहे हैं, छात्रों को दे सक रहे हैं। अतएव यहाँ पर मैं छात्रों से कहूँगा तुम लोग इस प्रतिष्ठान में आये हो, पर इस प्रतिष्ठान की, इस स्कूल की विशेषता क्या है यह तुम्हें जान लेना चाहिए। बिना चरित्रवान् हुए कोई भी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। चारित्रवान् होने पर ही तुम लोग बड़े बड़े काम कर सकोगे। जैसे महात्मा गाँधी को देखो, कितना बड़ा काम कर गये। इसीलिए तो कि वे चरित्रवान् थे! तुम लोगों से और एक बात कहूँ। आजकल वार्षिक समावर्तन-सभा में भाषण (Convocation Address) होता है और छात्र डिग्री लेकर चले जाते हैं। पूर्वकाल में जो समावर्तन-सभा होती थी, उसका सार अंश कुछ तुमसे कहता हूँ। वह उपनिषद् में है। शिष्य के घर लौटने से पूर्व आचार्य उसे उपदेश देते हुए कहते हैं, 'सत्यं वद', 'धर्मं चर' सत्य बात कहो, धर्म का आचरण करो। सत्य से विच्युत न होओ, धर्म से विच्युत न होओ। निन्दनीय कर्म मत करो। जो आचरण अच्छा हो वही करो। 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।' यह सब उपदेश तब आचार्य अपने शिष्यों को देते थे। स्वामीजी ने इसमें और दो बातें जोड़ दी हैं। 'दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव।' उस काल की समावर्तन-सभा और आजकल की समावर्तन-सभा का अन्तर तो देखो। दृष्टिकोण में कितना अन्तर

है। पूर्वकाल की शिक्षा में कहा गया है – तुम मनुष्य बनो। विद्यालय छोड़कर जा रहे हो ऐसा समझकर शिक्षा कहीं छोड़ न देना, अध्ययन न छोड़ देना। तुम्हें अध्ययन करना होगा। घर वापस लौटते समय शिष्य को आचार्य यही सब उपदेश देते थे। आजकल की समावर्तन-सभा के भाषण में हम दूसरे प्रकार की बातें सुनते हैं। इनकी भी आवश्यकता है। पर मनुष्य बनने के लिए जिस शिक्षा की आवश्यकता है, उसकी ओर आजकल कोई नजर नहीं है।

कलकत्ता या अन्यान्य शहरों के कोलाहल से तुम्हारी शिक्षा में, पढ़ाई-लिखाई में किसी प्रकार की बाधा न हो, इसीलिए ऐसे निर्जन स्थान में विद्यालय खोला गया है, जिससे तुम लोग केवल लिखना-पढ़ना लेकर रह सकोगे। पर तुम्हें यह भी स्मरण रखना होगा कि तुम भारतवासी हो। ऐसा नहीं कि तुम लोग यहाँ पर सबसे कटकर रहोगे, या कि बाहर के लोगों के साथ तुम्हारा कोई सम्पर्क न रहेगा। यहाँ पर रहने से तुम्हें यह भी अवसर मिलेगा कि इस संस्था के चारों ओर जो सब गाँव हैं, वहाँ के लोगों को तुम देख सको और जान सको कि वे ग्रामवासी किस प्रकार रहते हैं और क्या करते हैं। तब देखोगे कि उनकी अवस्था कैसी खराब है। तब तुम लोगों को स्वामीजी की उस बात का स्मरण आएगा कि इन सब लोगों को 'मनुष्य' बनाये बिना यदि मुट्ठी भर लोग लिखना-पढ़ना सीख भी जाते हैं, तो देश को कोई विशेष लाभ नहीं होने का। सबको शिक्षा देनी होगी – बस यह बात तुम्हें स्मरण रखनी होगी। इस देश को फिर से जगाकर उठाने के लिए इन लोगों को अच्छी तरह से शिक्षा देनी होगी। उन्हें काम-काज सिखाना होगा, जिससे वे अर्थोपार्जन कर सकें और ठीक ढंग से खा-पी सकें। अभी तो तुम्हें पढ़ाई की ओर अपना मन अधिक लगाना होगा। किन्तु इन ग्रामवासियों की अवस्था देख इनके दुःख की बात यदि तुम याद में बनाये रखो, तो समय पाकर उनकी सहायता कर सकोगे।

तुम लोगों की शिक्षा जब समाप्त होगी और तुम संसार में प्रविष्ट होगे, तब मैं तुमसे कहूँगा कि संसार में घुसने से पूर्व तुम एक वर्ष देश के काम के लिए

दो। जो गरीब और दुःखी हैं, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानते, उन्हें आदमी बनाने के लिए तुम एक वर्ष उनका साथ करो। इससे अपना जीवन प्रारम्भ करने से पूर्व तुम इन सब लोगों का आशीर्वाद प्राप्त करोगे। इनका आशीर्वाद लेकर काम शुरू करने से तुम्हें जीवन में सफलता मिलेगी।

और एक बात मन में उठ रही है। वह यह कि जो लोग पढ़ाई में बहुत अच्छे हैं, वे सभी विदेश जाना चाहते हैं। विदेश जाना अच्छा है, विदेश में पढ़ाई करना अच्छा है, किन्तु विदेश में बस जाना – यह मेरे मन को कैसा कैसा लगता है। तुम भला विदेश में क्यों बसोगे ? जिस देश ने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया, उसे चन्द चाँदी के टुकड़ों के लिए भूल जाओगे ? रुपया-पैसा पाने के लिए क्या भारत छोड़ दोगे ? यह विचार तुम्हें करना चाहिए। सही है कि देश के विरुद्ध तुम्हें कुछ शिकायतें हैं। तुम कह सकते हो – आप जो कह रहे हैं, वह है तो ठीक, पर हम तो यहाँ मारे मारे फिरते हैं, यहाँ हमारी कोई कीमत नहीं। यहाँ दो सौ रुपये की नौकरी पाने के लिए कितने झमेले में से गुजरना पड़ता है, पर अमेरिका जाने से ५०० डालर, १००० डालर, १५०० डालर की नौकरी मिल जाती है। इस शिकायत में कुछ सत्यता अवश्य है – हम अपने देश में वास्तविक प्रतिभासम्पन्न और कर्मदक्ष व्यक्ति को उसका उचित प्राप्य नहीं दे पाते, तथापि मैं तुम लोगों से यह निवेदन करूँगा कि भारतवर्ष को छोड़ना मत, उसे भूलना मत।

उस दिन मैंने एक पुराने समाचार-पत्र में पढ़ा कि भारत के बारह-तेरह लोगों ने विज्ञान में कोई एक पुरस्कार प्राप्त किया। अमेरिका में उनके नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया गया। वे सभी भारतीय हैं, पर अब वे अमरीकी नागरिक हैं। देखो, भारतवर्ष ने तुम्हें आदमी बनाया, उसके पास से तुमने लिया, और जब देने का समय आया, तब तुमने दूसरे एक देश को दे दिया। यह कैसी बात हुई ? यह भी विचार करने योग्य बात है। केवल रुपया-पैसा देखने से नहीं चलेगा। यहाँ कई प्रकार की असुविधाएँ हैं जरूर, पर तो भी भारतवर्ष को भूलने से नहीं बनेगा।

आज हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) की जन्मतिथि है। श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में उनका स्थान बहुत ऊँचा था। वे भी अमेरिका गये थे, पर वहाँ बस नहीं गये। फिर से भारत लौटकर उन्होंने साधना-तपस्या की। ऋषिकेश, नांगल आदि स्थानों में जाकर उन्होंने कड़ी तपस्या की थी। ये लोग जो त्याग का यह सब भाव रख गये हैं, वह सब भूलने से काम नहीं बनेगा। छात्रों ने, तुम लोगों ने सम्भवतः हरि महाराज की जीवनी नहीं पढ़ी होगी। तुम लोग यदि उनकी जीवनी और 'पत्रावली' पढ़ो, तो तुम लोगों का बहुत उपकार होगा। देखोगे वे कैसे तेजस्वी पुरुष थे।

मैं और अधिक समय नहीं लूँगा। श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी के पास यही प्रार्थना करता हूँ कि उनका आशीर्वाद इस प्रतिष्ठान पर हरदम रहे और जो सब लड़के यहाँ से निकलें, वे ठीक वैसे ही बनकर निकलें जैसा कि स्वामीजी ने चाहा था।

❖ ❖ ❖

चरित्र-गठन और राष्ट्र निर्माण*

आजादी के बाद से हमारे तरुणों में राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए सर्वत्र बहुत उत्साह परिलक्षित होता है। यह बहुत सराहनीय बात है। परन्तु इस कार्य को हाथ में लेने से पहले व्यक्ति के मनश्चक्षुओं के सामने इसका स्पष्ट चित्र होना चाहिए कि वह किस प्रकार का भारत चाहता है। उदाहरणार्थ, एक चित्रकार एकदम से कैनवास पर रंगों की तूलिका फिराना शुरू नहीं करता, क्योंकि वह एक अच्छा चित्र निर्माण करने की पद्धति नहीं है। उसे पहले अच्छी तरह सोचना होगा और अपने मन के सामने एक स्पष्ट चित्र अंकित कर लेना होगा कि वह क्या बनाना चाहता है और तभी वह कैनवास पर अपने मन में सोचे गये चित्र को रंगों का रूप दे सकता है। इसी प्रकार एक इंजिनियर भी एकदम से इमारत बनाना शुरू नहीं कर देता। वह पहले जान लेता है कि किसकी इमारत बननी है – वहाँ विद्यालय बनेगा या अस्पताल, कोई सार्वजनिक कार्यालय-भवन बनेगा या किसी का निवास-भवन ? तत्पश्चात् वह प्रयोजन के अनुसार नक्शा बनाता है और छोटी से छोटी बात पर बारीकी से ध्यान देते हुए निर्माण-कार्य शुरू करता है। इसी प्रकार तुम भी पहले अपने सामने भावी भारत का स्पष्ट चित्र अंकित कर लो और तब राष्ट्र के निर्माण का कार्य शुरू करो। क्या तुम भारत को एक महान् सैनिक शक्ति बनाना चाहते हो ? मुझे विश्वास है कि तुम वैसा नहीं चाहते, क्योंकि कोई भी सैनिक शक्ति अधिक दिन तक बची नहीं रह सकी। हिटलर और मुसोलिनी का क्या हस्र हुआ, जरा देखो तो। तो क्या तुम देश को अमेरिका के समान धनी, औद्योगिक उन्नति से सम्पन्न तथा कृषि के क्षेत्र में अतिशय रूप से प्रगत एक राष्ट्र बनाना चाहोगे ?

---

* रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन द्वारा दिसम्बर १९८० में आयोजित दूसरे महासम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित 'नया भारत गढ़ो' पुस्तिका हेतु लिखि गयी भूमिका।

हम एक गरीब देश हैं और अपने जनसाधारण को भोजन मयस्सर करने के लिए धन चाहते हैं। पर क्या केवल रोटी और दाल से हमारी समस्याओं का हल हो जाएगा ? क्या अमेरिका और अन्य उन्नत राष्ट्र, अपनी धन-सम्पदा के बावजूद मन की शान्ति और सच्चा सुख पा सके हैं ? नहीं ! जरा समृद्ध लोगों के बच्चों की ओर, तरुण लड़के और लड़कियों की ओर तो देखो, जिनके जीवन में कुछ पाने का लक्ष्य न होने के कारण जो हताश हो निरुद्देश्य इधर-उधर भटकते रहते हैं। उनमें से कुछ तो अतिशय धनी परिवारों से होते हैं, पर जीवन में कोई उद्देश्य न रहने के कारण वे बहुधा गहरी लक्ष्यहीनता के शिकार हो जाते हैं। हम सैन्यशक्ति इसलिए चाहते हैं, जिससे हम अपनी आजादी की रक्षा कर सकें, न कि पड़ोसियों को लूटने के लिए। हम धन इसलिए चाहते हैं, जिससे हम अपनी गरीब जनता के लिए भोजन जुटा सकें। पर यह राष्ट्र का आदर्श नहीं हो सकता। इन दोनों के अलावा और कुछ चाहिए। वह क्या है, जो धन और शक्ति के साथ साथ हमें शान्ति भी दे ?

मैं सलाह दूँगा कि तुम प्राचीन इतिहास को पढ़ो और देखो कि अशोक, चन्द्रगुप्त, कनिष्क तथा अन्य दूसरों के युग में भारत किस प्रकार शक्ति, सम्पदा और सुख से भरा हुआ था। वैदिक काल तथा बौद्ध युग में भी हमारे सामने महान् आदर्श थे, जिनकी बदौलत देश अतीत में इतना महान् बना था। किन्तु आज हमारा ऐसा पतन कैसे हो गया ? हमें उन कारणों को खोजना है, जो हमारी गिरावट के कारण बने। अतएव भावी भारत का निर्माण करते समय हमें उन आदर्शों को अपनाना होगा जिन्होंने हमें महान् बनाया था, उनको त्यागना होगा जिन्होंने हमें नीचे गिराया तथा साथ ही विज्ञान और अभियांत्रिकी को और जोड़ लेना होगा, जो तब के ज़माने में नहीं थे।

आजकल हम विज्ञान की दुहाई देते हैं और कहते हैं कि यह सब अन्धविश्वास है – वैज्ञानिक नहीं है। पर क्या वही वैज्ञानिक होगा कि हम बिना यह जाने कि उसमें क्या क्या अच्छाइयाँ थीं और हमें किसने विगत तीन हजार वर्षों तक एक

राष्ट्र के रूप में धारित करके रखा, अतीत की पूरी तरह उपेक्षा कर दें और उन पश्चिमी आदर्शों के पीछे दौड़ें, जो काल की कसौटी पर खरे नहीं उतर सके तथा जो अधिक से अधिक दो सौ साल पुराने हैं ? और उनमें से कुछ तो अभी अभी के हैं। क्या उन आदर्शों ने पश्चिम के देशों की समस्याओं को दूर किया है ? क्या वे सुखी हैं ? क्या उन्हें शान्ति मिली है ? ऐसा तो नहीं दिखता। फिर क्यों उन आदर्शों के पीछे जाना ?

मेरे तरुण मित्रों ! हम लोग मनुष्य हैं। ईश्वर ने हमें बुद्धि दी है, जिससे कि हम उसका उपयोग करें और उन लोगों से अपनी रक्षा करें जो आकर हमें जानवरों के समान हाँककर ले जाना चाहते हैं। इसलिए मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि अतीत और वर्तमान के सम्बन्ध में तुम सारी जानकारी, सारे उपादान इकट्ठा कर लो और अच्छी तरह सोच-विचारकर भविष्य की योजना बनाओ। भावुकता में मत बहो।

सबसे पहले चरित्र ही सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है। उसके बिना कोई महान् काम नहीं सधता। महात्मा गाँधी की ओर देखो, उन्होंने कैसे अपने चरित्र-बल पर पूरे देश को आन्दोलित कर दिया और इँग्लैण्ड को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने बन्दूक या अणुबम आदि का सहारा नहीं लिया। अतएव यदि तुम भारत को महान् बनाना चाहते हो, तो पहले अपना चरित्र गढ़ो। फिर अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए यह जान लो कि तुम किस प्रकार का भारत गढ़ना चाहते हो और तत्पश्चात् उसकी सिद्धि के लिए जुट जाओ, भले ही उसमें तुम्हें अपने जीवन की आहुति देनी पड़े। इस प्रकार के अध्ययन के लिए स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें तुम्हारी मार्गदर्शक बनेंगी और भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों की महानता के साथ तुम्हारा परिचय कराएँगी।

राष्ट्र के पुनर्गठन के लिए सन्देश*

आज भारत संकटकाल में से गुजर रहा है। और भारत क्यों, सारा विश्व ही। भारत में हम अपने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दुर्व्यवस्था पाते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा को ही ले लें। यद्यपि हमें मानवी ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के व्यावहारिक विषयों की शिक्षा दी जाती है, पर उन सबका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। हमारी प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में ऐसा नहीं था। हमारी शिक्षा का प्रथम लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह भारत के भावी नागरिकों को राष्ट्र के सांस्कृतिक आदर्शों को हृदयंगम कराए, क्योंकि उसी से वे भारत के सच्चे नागरिक बन सकते हैं। इस सन्दर्भ में हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली एकदम असफल रही है। फल यह हुआ है कि छात्र अपनी सांस्कृतिक जड़ों से, जिनके द्वारा राष्ट्र संघटित था, दूर होते जा रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में भी इसी प्रकार की दुर्व्यवस्था विद्यमान है। गरीबी दूर करने के हमारे प्रयासों के बावजूद जनसाधारण की दशा बद से बदतर होती जा रही है। कभी कभी हम ऐसे कथन सुनते हैं कि "राष्ट्रीय आय में चार प्रतिशत की वृद्धि हुई है"। यह सही हो सकता है, पर गरीबों को इसका कोई लाभ नहीं मिलता, क्योंकि वृद्धि का अत्यल्प अंश ही उन तक पहुँच पाता है। जब तक उनकी आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक अवस्थाओं में उन्नति नहीं होगी, देश के लिए कोई आशा नहीं है। इसे कारगर करने के लिए केवल सरकार का मुँह जोहने से नहीं चलेगा, परन्तु समाज को एक होकर इस कार्य को अपने हाथ में लेना होगा। धनिकों को उनकी दशा सुधारने के लिए सामने आना पड़ेगा और उनकी सहायता करनी होगी – इससे केवल जनता का और देश का ही

---

* श्रीरामकृष्ण आश्रम, बँगलौर के नवनिर्मित 'स्वामी विवेकानन्द शताब्दी सभागृह' के उद्घाटन के अवसर पर ७ दिसम्बर १९८० को अँगरेजी में दिया गया भाषण।

भला नहीं होगा, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उनका स्वयं का भला होगा। वे चिरकाल तक के लिए सामाजिक एवं अन्य वैषम्यों के इस ऐकान्तिक विशेषाधिकार को भोगते रहने की आशा नहीं कर सकते। वे जनता की सहायता के लिए जितना शीघ्र आगे आएँगे, उनके तथा देश के लिए उतना ही अच्छा है।

प्राचीन युग में समाज की संरचना समाजवादी आधार पर हुई थी। प्रत्येक से यह आशा की जाती थी कि वह किसी न किसी प्रकार समाज और देश की सेवा करे। साथ ही समाज ने व्यक्ति को जीवन का आनन्द लेने के लिए कुछ छूट भी दी थी, पर कुछ सीमाओं के साथ, जिससे राष्ट्र का जीवन अव्यवस्थित न हो उठे। किन्तु आज तो हम राष्ट्रीय जीवन में एकदम उल्टी ही बात पाते हैं, जिसके कारण ऐसी गम्भीर समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं, जिनका हम समाधान नहीं कर पा रहे हैं। उदाहरण देकर इन बातों को बताने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। उद्योग, श्रम और व्यवसाय के क्षेत्र में जो हाल है, उससे हम सभी भली-भाँति परिचित हैं। ये सारे क्षेत्र आत्यन्तिक स्वार्थपरता से विषाक्त हो गये हैं, जहाँ मौलिक अधिकारों का नारा तो लगाया जाता है, पर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध नहीं कराया जाता। राजनीतिक क्षेत्र में तो हालात और भी खराब हैं।

हाल ही में कलकत्ता में फुटबाल टूर्नामेण्ट के समय एक दुखद घटना घट गयी। दो विरोधी टीमों के प्रशंसक आपस में भिड़ गये, जिससे दस लोगों की जान गयी और लगभग पचास लोग आहत हुए। सारा शहर यह जानकर स्तब्ध हो गया। दूसरे दिन आकाशवाणी पर एक कार्यक्रम हुआ, जिसमें भिन्न भिन्न क्षेत्रों के कई लोगों से भेटवार्ता ली गयी – कल जो घटा था, उस पर उनका मतामत जानने के लिए और विशेष करके यह ज्ञात करने के लिए कि टूर्नामेण्ट को चलाया जाना चाहिए या नहीं। अधिकांश लोगों ने टूर्नामेण्ट को बन्द कर देने के पक्ष में अपना निर्णय दिया। पर एक व्यक्ति ने घटना की युक्ति-युक्त समीक्षा की और कहा, "टूर्नामेण्ट को बन्द करने का औचित्य क्या है ? हमारे राष्ट्रीय जीवन के दूसरे क्षेत्रों में रोजमर्रा जो घटनाएँ घटती हैं, यह भी उनमें से एक है। ये तो उस

रोग के बाहरी लक्षण हैं, जिसने समूचे राष्ट्रजीवन को विषाक्त कर रखा है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन लाना ही इस रोग का निदान है।" उस व्यक्ति ने रोग को सही सही पहचाना। संकट बाहर की दुनिया में नहीं है, वह तो मनुष्य के अन्तर्मन में है। संसद में कानून बनाकर परिवर्तन नहीं लाया जा सकता, बल्कि वह धर्म के द्वारा लाया जा सकता है। धर्म से मेरा मतलब कतिपय अन्धविश्वासपूर्ण आस्थाओं से नहीं है; आध्यात्मिक सत्यों की प्रत्यक्ष अनुभूति ही धर्म है।

भारत तथा विश्व में आज हम जो ऐसी घटनाएँ देखते हैं, वे कोई नयीं नहीं हैं। यदि आप विश्व का इतिहास पढ़ें, और विशेषकर भारत का इतिहास देखें तो आप पाएँगे कि ऐसी घटनाएँ युग युग में घटती रही हैं। हमने पतन के कई युग देखे। ऐसे हर पतन के युग के साथ हमने उन आध्यात्मिक दिग्गजों को भी देखा, जो हमारे बीच आये और युग के अनुरूप तथा आवश्यक आध्यात्मिक सन्देश देकर समाज का पुनर्निर्माण कर गये। उनके उन सन्देशों को पूर्ण रूप से विकसित होने में शताब्दियाँ लग गयीं। स्वामी विवेकानन्द 'ईशदूत ईसा' में कहते हैं –

"सागर में एक ओर जहाँ उत्तुंग तरंगों का नर्तन होता है, दूसरी ओर एक अथाह खाई भी होती है। उच्च तरंग उठती है, और विलीन होती है। फिर एक प्रबलतर तरंग उठती है, मुहूर्त मात्र में उसका पतन होता है और पुनः उत्थान भी। इसी प्रकार तरंग पर तरंग सागर के वक्ष पर अग्रसर होती रहती है। विश्व के घटना-प्रवाह में भी निरन्तर इसी प्रकार का उत्थान और पतन होता रहता है, किन्तु हमारा ध्यान केवल उत्थान की ओर जाता है, हमें पतन का विस्मरण हो जाता है। पर विश्व की गति के लिए दोनों ही आवश्यक हैं – दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। यही विश्व-प्रवाह की रीति है।

"हमारे मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जगत् में सर्वत्र यही क्रमगति, यही उत्थान-पतन चल रहा है। उसी प्रकार विश्व-प्रवाह में उच्चतम कार्य, उदार आदर्श समय समय पर जन्म लेते हैं और जनसमूह की दृष्टि आकर्षित कर विलीन हो जाते हैं – मानो वे अतीत के भावों का परिपाक कर रहे हों, मानो

प्राचीन आदर्शों का रोमन्थन करने को वे अदृश्य हो गये हों, जिससे ये भावसमूह, ये आदर्श, समाज में अपना योग्य स्थान पा लें, समाज के एक एक अंग के रुधिरबिन्दू में उनका प्रवेश हो जाए और पुनः एक प्रबल एवं उच्चतर उत्थान के लिए वे शक्तिसंचय कर लें। दुनिया के राष्ट्रों के इतिहास में भी यही गति दृग्गोचर होती है।"

हम गीता में पढ़ते हैं –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥४।७-८।

– हे भारत! जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ता है, तब तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ। भले लोगों की रक्षा एवं दुष्टों के विनाश के लिए तथा धर्म की पुनःप्रतिष्ठा के लिए मैं युग युग में अवतीर्ण होता हूँ।'

इस प्रकार हमारे बीच श्रीराम आये, श्रीकृष्ण और बुद्ध आये, श्रीगौरांग आये और अब श्रीरामकृष्ण आये हैं। वर्तमान युग की सड़न से रक्षा के लिए आध्यात्मिकतासम्पन्न एक नये व्यक्तित्व और नये सन्देश की आवश्यकता है – केवल भारत के लिए नहीं, अपितु सारे विश्व के लिए। वर्तमान युग में हमें श्रीरामकृष्ण में ऐसा व्यक्तित्व प्राप्त होता है। यदि हम वर्तमान परिस्थितियों एवं श्रीरामकृष्ण द्वारा छोड़े गये सन्देश का विश्लेषण करें, तो हम पाते हैं कि वे ही इस युग के पुरुष हैं, जिनके लिए सारा संसार लम्बे समय से प्रतीक्षा करता रहा है। विशेषकर भारत के लिए उनका सन्देश अनिवार्य है, यदि हम राष्ट्र और समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तथा एक महान् राष्ट्र के रूप में पुनः सामने आना चाहते हैं। हमें दूसरे राष्ट्रों को भी अपने इस आध्यात्मिक सन्देश में सहभागी बनाना पड़ेगा, क्योंकि वे भी इसकी बाट जोह रहे हैं। हमने बीते दिनों में ऐसा किया था और अब इस युग में भी हमें एक बार पुनः ऐसा करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण

का सन्देश मथुरा से भूमध्यसागर के तट तक गया था और बुद्ध का सन्देश विश्व के समूचे पूर्वी भाग में छा गया था। श्रीरामकृष्ण के आधुनिक सन्देश का समस्त संसार में फैलना निश्चित है। विश्व के सभी भागों में उनके सन्देश को बड़ी तत्परता के साथ ग्रहण किया जा रहा है। उनका वह सन्देश क्या है ? मैं उसे यथासम्भव संक्षेप में रखने का प्रयास करूँगा, क्योंकि मैंने वैसे भी आपका बहुत समय ले लिया है।

सन्देहवादी वैज्ञानिक जगत्, जो तर्क और प्रत्यक्ष प्रमाण पर निर्भर करता है, के लिए उन्होंने अपनी अपरोक्ष अनुभूति के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया, जिसे वैज्ञानिक जगत् ने किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में नकार दिया था। उन्होंने केवल ईश्वर के अस्तित्व को ही प्रमाणित नहीं किया, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि सारे धर्म सत्य हैं तथा प्रत्यक्ष अनुभूति के मार्ग से ईश्वर-साक्षात्कार को ले जाते हैं, इस सन्देश का विशेषकर भारत के सन्दर्भ में एक बड़ा महत्त्व है, जहाँ बहुतसे धर्म हैं, जो आपस में लड़ते-झगड़ते और खून-खराबी करते रहते हैं। केवल यह सन्देश ही विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को एक महान् राष्ट्र के रूप में संगठित कर सकता है।

उन्होंने हम सामाजिक रूप से सैकड़ो दलो में विभक्त, परस्पर लड़ने-भिड़नेवाले और बहुधा रक्तपात करनेवाले लोगों को यह भी बताया कि इन सतही विभिन्नताओं के पीछे वही एक आत्मा है, और इस सत्य की अज्ञानता ही इन सब झगड़ों की सृष्टि करती है। उन्होंने उपदेश दिया कि जीव शिव ही है; और केवल इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कि जो यह दृष्टिकोण लेकर जीव की सेवा करता है, वह ईश्वर-साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। आज उनके इस सन्देश का हमारे लिए बड़ा महत्त्व है। वह लौकिक और अलौकिक का, कर्म और उपासना का सारा अन्तर समाप्त कर देता है। वह इसमें हमारी सहायता करता है कि हम अपने राष्ट्रीय आदर्श ईश्वर-लाभ से भी जुड़े रहें तथा साथ ही राष्ट्र के पुनर्निर्माण में जो भी कार्य आवश्यक हो वह करें, अन्यथा कर्म तो साधारणतया हमें बहिर्मुखी

बना देता है और ईश्वर-साक्षात्कार में बाधक होता है।

अतएव मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप इस महान् आदर्श को पकड़े रहें तथा पिछड़े लोगों को आर्थिक, शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से आगे बढ़ाने के काम में लग जाएँ। स्वामीजी ने हमें बताया है कि जनसाधारण के प्रति हमारी उपेक्षा ही राष्ट्र के पतन का कारण रही है। शताब्दियों से हमने जनता की उपेक्षा की है और उसे दबाये रखने के लिए उस पर सब प्रकार का अत्याचार किया है। फलस्वरूप हमें देश की गुलामी मिली। कोई भी बाहर से सहज ही में भारत आ सकता था और यहाँ अपना राज्य या साम्राज्य स्थापित कर सकता था, क्योंकि जनता को देश के मामले में कोई रुचि नहीं थी। उसे इससे क्या अन्तर पड़ता था कि भारतवासी उस पर शासन करें या विदेशी, क्योंकि दोनों ही दशाओं में उसकी स्थिति समान थी उसे तो बस गरीबी और पीड़ा का ही भोग करना था। परिणाम यह हुआ कि सारा राष्ट्र गुलामी की जंजीरों में बँध गया, क्योंकि उच्च वर्ण के लोग जनसाधारण की सहायता के बिना विदेशी आक्रमण को नहीं झेल सके। इसीलिए मैं पुनः स्वामीजी के उस सन्देश की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा, जिसमें उन्होंने हमें सावधान करते हुए कहा है : "जनसाधारण की उपेक्षा मत करो।" अतएव धनिक और उच्च वर्ग के लोगों को अपनी उच्चता की मिथ्या धारणा तथा अपने धन और आभिजात्य के झूठे घमण्ड से नीचे उतरकर जनसाधारण के लिए कार्य करना है – केवल उनकी अवस्था में सुधार लाने के लिए ही नहीं बल्कि स्वयं के जीवित बचे रहने के लिए भी। आज हम अपने राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक क्षेत्रों में ऐसी हरकते कर रहे हैं, जो अन्त में आकर उल्टे हमीं को चोट करेंगी और हमारा काल बनेंगी, क्योंकि एक दिन जनता का जागरण निश्चित है और उस उठा-पटक में केवल हमीं नष्ट नहीं होंगे, अपितु जो कुछ भी राष्ट्र में अच्छा है, वह भी नष्ट हो जाएगा। अतएव, हमें अपने बचे रहने के लिए जनता की सहायता करनी है और उसे ऊपर उठाना है।

इसलिए, मित्रों, मैं आपमें से प्रत्येक से अपील करता हूँ कि आप व्यक्तिगत रूप से इस कार्य में सक्रिय रुचि लें और साथ ही ऐसे कार्य करने के लिए संस्थाएँ भी बनाएँ। मित्रों, आप सरकार से अधिक कोई आशा न रखिए, क्योंकि वह विशेष कुछ नहीं कर पाती है। सरकार ने जिन बड़ी बड़ी योजनाओं को स्वीकृत किया है और कानूनों को पारित, तथा वह भविष्य में जो भी स्वीकृत और पारित करेगी, उनका क्रियान्वयन तब तक नहीं हो सकता, जब तक हम उन्हें नहीं अपनाते हैं। अतः सरकार की ओर देखने और उसे दोष देने में कोई तथ्य नहीं है, क्योंकि वह भी तो आखिर इसी समाज का एक अंग है। आप स्वयं आगे बढ़िए, इस कार्य को अपनाइए, फिर जो भी शासन सत्तारूढ़ होगा, वह अपने आप ठीक हो जाएगा। स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण की इस प्रकार व्याख्या की है, जिसे हम समझ सकें। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के जीवन के उच्च वोल्टेज को कम वोल्टेज में परिणत किया है, जो हमारे दैनन्दिन जीवन और गतिविधियों में हमारे लिए बहुत कुछ कर सकता है। अतएव स्वामीजी का अनुसरण करें। इससे हम अवश्य उस लक्ष्य को प्राप्त करेंगे, जो है, अलग अलग दिशाओं में खींचनेवाले इस स्वार्थपर जनसाधारण को एक दिशा में जानेवाले राष्ट्र के रूप में जोड़ना और उसे इतना महान् बनाना, जितना वह पहले कभी नहीं था।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

❖ ❖ ❖

गलत आदर्श*

मुझे प्रसन्नता है कि कलकत्ता एवं आसपास के जिलों से आज यहाँ आकर तुम लोग इस सभागार में समवेत हुए हो, जिसका नामकरण भारतमाता की कृती सन्तान एवं देशभक्त-सन्त स्वामी विवेकानन्द के नाम पर किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द को भारत के तरुणों पर बहुत बड़ा विश्वास था और उन्होंने अपने इस विश्वास को उन बहुत से व्याख्यानों में वाणी भी दी, जो उन्होंने पश्चिम से अपनी मातृभूमि में लौटने के बाद दिये थे। वे तुमसे बहुत कुछ अपेक्षा रखते थे और मुझे आशा है कि तुम उन्हें निराश नहीं करोगे। वे चरित्र-निर्माण पर बहुत बल देते थे, क्योंकि किसी भी बड़े कार्य की सफलता उसी पर निर्भर करती है।

उन्होंने अपने देशवासियों को बताया कि राष्ट्र का प्राण देश की संस्कृति में केन्द्रित है और यह संस्कृति आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। वे चाहते थे कि देश को पहले आध्यात्मिक भावों से प्लावित कर दिया जाए, जिससे सभी लोग उन आध्यात्मिक सत्यों के सम्बन्ध में सुन सकें, जो अब तक कुछ ही लोगों द्वारा गोपनीय बनाकर रखे गये थे। इन महान सत्यों ने ही इस राष्ट्र के जीवन को विगत तीन हजार से भी अधिक वर्षों से स्पन्दित किये रखा है। यदि इन आदर्शों का त्याग कर दिया जाए, तो वह राष्ट्र की मृत्यु साबित होगा।

आधुनिक तरुणों में एक प्रवृत्ति दिखायी देती है कि वे देश के बाहर से आनेवाले नये विचारों के पीछे तो दौड़ते हैं, पर अपने स्वयं के राष्ट्रीय आदर्शों को

---

* रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के विवेकानन्द सभागार में २३ मई १९८१ को आयोजित १५ से ३० वर्ष के लगभग एक हजार युवक-युवतियों के सम्मेलन को भेजा गया सन्देश।

निरुपयोगी मान उनकी निन्दा करते हैं। यह एक अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जो इस महान् राष्ट्र के ऐतिहासिक विकास को न जानने का परिणाम है। यह कोई अस्वीकार नहीं करता कि उन नये आदर्शों ने दूसरे देशों में कुछ सामाजिक भलाई की है, पर वे हमारे लिए अच्छे नहीं भी हो सकते हैं, क्योंकि यहाँ का सामाजिक परिवेश उन आदर्शों के अनुकूल नहीं है और इसलिए वे यहाँ पनप नहीं पाएँगे। आम का फल हमारे लिए मैदानों में कितना भी स्वादिष्ट क्यों न हो, पर उसे हम हिमालय की ऊँचाई पर उगा नहीं पाएँगे। कोई बात भारत में तभी अपनी जड़े जमा पाएगी, जब वह यहाँ के सामाजिक परिवेश के अनुकूल होगी और इस राष्ट्र के आध्यात्मिक आदर्श के साथ अपना तालमेल बिठा पाएगी, क्योंकि यह आध्यात्मिकता ही इस राष्ट्र के जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

मेरे युवक मित्रों ! मैं तुमसे अनुरोध करूँगा कि तुम विवेकानन्द साहित्य को पढ़ो और स्वामीजी के विचारों से अच्छी तरह परिचित हो जाओ। फिर उन विचारों से उनकी तुलना करो, जो इस देश में घुसने की चेष्टा कर रहे हैं। तत्पश्चात् देश के भावी नवनिर्माण का पथ सुनिश्चित करो।

एक और अपील मैं तुमसे करूँगा। तुम लोग अपनी शिक्षा शीघ्र ही पूर्ण करनेवाले होंगे, या सम्भवतः तुममें से कुछ ने अब तक पूरी कर ली होगी और अब जीवन में प्रवेश की तैयारी कर रहे होंगे। जीवन में प्रवेश करमे के पूर्व यदि तुम सब लोग पिछड़े लोगों के उत्थान हेतु एक वर्ष के लिए अपनी सेवाएँ दे सको और तत्पश्चात् उन लोगों का आशीर्वाद ले जीवन में प्रवेश करो, तो यह देश के प्रति तुम्हारी महती सेवा होगी।

स्वामीजी के पीछे चलो-१*

मैं कोई भाषण नहीं दूँगा, कम से कम औपचारिक भाषण तो नहीं ही दूँगा। मुझसे दो शब्द कहने के लिए कहा गया है, मैं ठीक वही करना चाहता हूँ। जब भी मुझसे भाषण देने के लिए कहा जाता है, तब मुझे स्वामी विवेकानन्द का एक कथन स्मरण हो आता है, जो उन्होंने एक अवसर पर किया था। एक सन्ध्या उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया ही था कि कोई उनके पास आया और बोला, "स्वामीजी, आपका भाषण प्रेरणादायी था।" इस पर स्वामीजी बोले, "हाँ, वह पाँच प्रतिशत तो प्रेरणा था और पंचानबे प्रतिशत पसीना !" किन्तु अभी हमने सभाध्यक्ष का जो व्याख्यान सुना, उसने मुझे बोलने के लिए कुछ प्रेरणा दी है। सो मैं अब संक्षेप में अपना वक्तव्य रखता हूँ।

स्वामी भूतेशानन्द ने शास्त्रों का उद्धरण देते हुए बताया – "श्रोतव्यः (सुनना चाहिए), मन्तव्यः (मनन करना चाहिए), निदिध्यासितव्यः (ध्यान करना चाहिए)।" आज यहाँ कई लोगों के भाषण हुए हैं, पर मेरा उन सबको सुनने का सौभाग्य नहीं हुआ। मैंने केवल उनमें से एकतिहाई ही सुना है, क्योंकि मैं इस सम्मेलन के प्रथम दो सत्रों में उपस्थित नहीं हो पाया। पर तुम लोगों ने वह सब का सब सुना है। मतलब यह कि तुमने शास्त्र की पहली आज्ञा का – 'श्रोतव्यः' का पालन कर लिया है। अब तुम्हें उन पर मनन करना है। मैं सोचे लेता हूँ कि तुम लोग घर वापस लौटकर वैसा करोगे। तुम्हें अपने मन में विचार करना चाहिए – "हमने ये सब बातें सुनी हैं . . . इनका ठीक-ठीक मतलब क्या है ? . . . हमारा कर्तव्य क्या है ? आदि आदि।" तुम्हें सभी दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिए और तब

---

* रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता में २३ मई १९८१ को आयोजित विवेकानन्द भावानुरागी सम्मेलन में बँगला में दिया गया व्याख्यान।

अपने अगले कदम निदिध्यासन – की बात निश्चित करनी चाहिए। तुम्हें गहराई में उतरकर अच्छी खासी एकाग्रता के साथ विचार करना होगा, जिससे जो कुछ तुमने सुना और निश्चित किया है उसके यथार्थ मर्म को तुम समझ सको। जब तुम्हारे मन में यह स्पष्ट हो जाएगा कि तुमसे किस बात की आशा रखी जाती है, तब कार्य का समय आएगा। यदि तुम इस क्रम से अपने को काम करने के लिए तैयार करोगे, तो तुम्हारा इस सम्मेलन में भाग लेना सार्थक कहा जाएगा।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि जो हमने आज सुना है, हम उस पर गहराई से मनन करेंगे और तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक कार्य में जुट जाएँगे। सही ढंग से काम करना ही महत्त्व की बात है। जो विचार हमें आज मिले, उन्हें व्यवहार में उतार सकने से स्वयं हमारा ही लाभ होगा। प्रश्न यह है कि क्या हम आदर्श के लिए सब कुछ त्यागने को तैयार हैं ? स्वामीजी हमसे जो अपेक्षा रखते थे, वह पुस्तकों में लिपिबद्ध है। पुस्तकें हमें सब कुछ बता देती हैं। पर आवश्यकता इस बात की है कि हम उन बातों को व्यवहार में उतारें। सभाध्यक्ष महोदय ने ठीक ही कहा कि स्वामीजी ने हमें मानो समुद्र में ढकेल दिया है। अब हमें अपने को बचाने के लिए प्रयत्न करना है। जो कुछ भी हम में उपलब्ध है – अपनी शक्ति, अपना मस्तिष्क, अपना सब कुछ – इन सबकी सहायता लेकर हमें स्वामीजी के पास वापस जाने की चेष्टा करनी चाहिए। इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि स्वामीजी ने जो प्रकल्प और योजनाएँ हमें दी हैं, वे सभी अति उत्तम हैं, पर उनका कार्यान्वयन बहुत कठिन है, विशेषकर देश की वर्तमान परिस्थिति में। यह स्वीकार करते हुए भी कि उन योजनाओं को कार्यरूप देना कठिन है, हमें स्मरण रखना चाहिए कि वर्तमान अव्यवस्था की स्थिति से देश को उबारने के लिए स्वामीजी द्वारा प्रदर्शित पथ ही एकमात्र मार्ग है। स्वामीजी की यह आशा थी कि एक दिन भारत विश्व के मंच पर एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। यह कार्य हमारे लिए अभी भी बाकी है। जब हम यह कर लेंगे, तभी उनका आशीर्वाद पाने के दावेदार बनेंगे। निस्सन्देह यह एक कड़ी चढ़ाई पर चढ़ने-जैसा कठिन है, पर जब हम स्वामीजी

के पीछे चलना शुरू करेंगे, तब वे हमें समस्त आवश्यक शक्ति प्रदान करेंगे और उनके आशीर्वाद से हम सफल भी होंगे – यह मेरा पक्का विश्वास है। स्वामीजी के पीछे चलने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है – 'नान्यः पन्था विद्यते'।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब अधर्म बढ़ता है, तब वे जन्म लेते हैं। वे क्यों जन्म लेते हैं ? – सही धर्म की शिक्षा देने तथा सज्जनों की रक्षा के लिए। इस युग में परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जैसे दो महान् आध्यात्मिक दिग्गजों को आना पड़ा। उनके पीछे चलना हमारा कर्तव्य है। यदि हम उनका अनुसरण नहीं करेंगे तो किनका करेंगे ? आजकल तो कई नये-नये विचार प्रचारित होते हैं। क्या हम उनका अनुसरण करेंगे या कि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द द्वारा उपदिष्ट महान् भावों और आदर्शों के पीछे चलेंगे ? यह एक विचित्र संयोग है कि जब भी धर्म की अवनति हुई है, भारत में ईश्वर के अवतारों या ईश्वरतुल्य महापुरुषों ने जन्म लिया है। यदि हम भारत के इतिहास पर विश्वास करें, तो इस प्रकार की घटना बारम्बार हुई है। इस युग में भी आध्यात्मिक दिग्गज आये हैं, और इस समय एक नहीं बल्कि दो। एक ने कठोर साधनाओं के द्वारा सत्य का आविष्कार किया और दूसरे ने संसार भर में उसे फैला दिया। तो, अब हम इसका अनुसरण करेंगे या अन्य किसी और का ? एक भारतीय होने के नाते क्या हमें इन आदर्शों का अनुसरण नहीं करना चाहिए ? इतिहास हमें जो सबक सिखाता है, वह भी हमें इन्हीं आदर्शों के पीछे चलने को प्रेरित करता है। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द दोनों ही महान व्यक्ति थे, और यह हम स्वयं जानते हैं। इसके बावजूद यदि हम उनके पीछे न चलें, तो क्या वह एक विडम्बना ही न होगी ? इसीलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि हमें पहले स्वामीजी के ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए और तत्पश्चात् कार्य करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। उसी में हमारी मुक्ति निहित है। हम दूसरे तरीकों को अपनाकर देख सकते हैं, पर अन्त में हमें स्वामीजी के पास ही आना पड़ेगा, वे ही हमारी अन्तिम गति हैं। अन्य दूसरे स्थानों पर मार्गदर्शन के लिए

भटकते रहना केवल समय का नाश है। अवश्य ही हम श्रीरामकृष्ण द्वारा बताये गये उस पक्षी की तरह नहीं होना चाहेंगे, जो जहाज के मस्तूल को छोड़कर धरती की तलाश में हर दिशा में दूर-दूर तक उड़कर जाता था, पर असफल होकर मस्तूल पर ही लौटकर बैठ जाता था। हम नये और विदेशी भावों का प्रयोग करने में अपने समय और शक्ति का नाश न करें, अपितु स्वामीजी को अपना पथ-प्रदर्शक मान शुरू से ही उनके द्वारा बताये गये रास्ते पर चल पड़े।

स्वामीजी के हृदय में लबालब प्यार भरा था। वैसे तो वे सभी जगह के मनुष्यों को प्यार करते थे, फिर भी गरीब और पददलित उनके प्यार के विशेष अधिकारी थे। जहाँ कहीं भी मानवता पीड़ित हो, वे उद्वेलित हो उठते थे। वे कहा करते, "मनुष्य का हृदय जितना विशाल होता है, उसकी वेदना भी उतनी ही तीव्र होती है।" अमेरिका-यात्रा पर निकलने से पूर्व उनकी भेंट अपने दो गुरुभाइयों से हुई। वे उनसे बोले, "देखो ! मैं नहीं जानता कि धर्म क्या है। पर यह अवश्य जानता हूँ कि मेरा हृदय विशाल हो गया है।" ये स्वामीजी के ही शब्द थे।

स्वामीजी ने वह रास्ता हमें दिखाया है, जिस पर चलकर हम मानव-पीड़ा को हर सकते हैं। यदि हम उनका निर्देश न माने, तो हम व्यर्थ ही अपने को उनका अनुयायी कहते हैं। ईसा के सन्देश को ग्रहण न करने के कारण यहूदियों को बड़ी यातनाएँ सहनी पड़ीं। यदि हम ऐसा दुर्भाग्य अपने लिए नहीं चाहते, तो हमें स्वामीजी के सन्देश को समझना होगा तथा अपनी एवं अपने साथ के लोगों की उन्नति के लिए कार्य करना होगा। मैं स्वामीजी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें प्रेरणा और शक्ति दें, जिससे जो काम उन्होंने हम पर न्यस्त किया है उसे ठीक-ठीक कर सकें।

स्वामीजी के पीछे चलो-२*

हम लोग स्वामी विवेकानन्द की पुकार पर यहाँ सम्मेलन में इकट्ठे हुए हैं। तुम लोग इस क्षेत्र के विभिन्न भागों से उनके सन्देश पर विचार-विमर्श करने के लिए और यह देखने के लिए यहाँ पर आये हो कि हमारे देश का पुनर्निर्माण करने के लिए क्या क्या बातें आवश्यक हैं तथा उनको तुम किस प्रकार कार्यरूप दे सकोगे। तुम्हें मालूम है कि दो साल पहले, १९८० ई. में हम लोगों ने बेलुड़ मठ में एक सम्मेलन किया था – यह मूल्यांकन करने के लिए कि १९२६ ई. में जो हमारा पहला सम्मेलन हुआ था तब से अब तक हम लोग स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों के अनुसार कितना कुछ कर पाये हैं। उसका उद्देश्य यह था कि हम वह जानकर अपनी भावी कार्य-नीति निश्चित कर लें। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि हमारा देश आज एक संक्रान्ति के दौर से गुजर रहा है। हम लोगों ने उस सम्मेलन में इन सब बातों पर विचार किया था और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि श्रीरामकृष्णदेव का सन्देश देश में सर्वत्र फैला देना बहुत जरूरी है, क्योंकि संसार आज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है, उन सबके समाधान के लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त है; देश के कोने कोने में श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के भावों का प्रचार-प्रसार आज सबसे आवश्यक है, जिससे सब लोग उनकी जीवनी, विचारों और सन्देश से परिचित हो सकें।

यह भी तय किया गया था कि केवल प्रचार से काम नहीं बनेगा। बल्कि साथ ही हमें उन लोगों को भी ऊपर उठाना होगा, जो पीड़ित हैं और विषमताओं के शिकार हैं। उन्हें शिक्षा देनी होगी, ऐसा कुछ सिखाना होगा जिससे वे अपनी

---

* रामकृष्ण मिशन सारदापीठ, बेलुड़मठ द्वारा आयोजित क्षेत्रीय रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए २६-१२-१९८२ को दिया गया व्याख्यान।

आर्थिक दशा को सुधार सकें और साथ ही आध्यात्मिक भावों से भी युक्त हो सकें। हम लोग उस सम्मेलन में इन्हीं निष्कर्षों पर आये थे। हमने यह भी तय किया था कि पिछड़े हुए लोगों को ऊपर उठाने के लिए हमें सामाजिक स्तर को गिराना नहीं है – ऐसा नहीं करना है कि सबको बराबर बनाने के लिए हम ऊँचे को काटकर नीचा कर दें, पर यह कि नीचे को उठाकर ऊपर ले जाएँ। समाज में असन्तुलन और विक्षोभ पैदा नहीं करना है। जो लोग नीचे गिरे हुए हैं, उनकी ओर विशेष ध्यान देकर उन्हें ऊपर उठा लेना है। इसके लिए हम सबने यही सोचा कि देश के आध्यात्मिक भाव को बिना बिगाड़े जो आदर्श हमें इस कार्य में सहायक होगा, वह है श्रीरामकृष्ण का वह सन्देश, जो जीव को शिव के रूप में देखने की शिक्षा देता है। हर व्यक्ति में उसी भगवान् को देखते हुए मानवता की नाना प्रकार से सेवा करते हुए हम केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही उन्नत नहीं होंगे, बल्कि हम देश को भी विभिन्न प्रकार से शिक्षा, राजनीति, वाणिज्य एवं अन्य क्षेत्रों में उन्नत बना देंगे। यह हमें नहीं भूलना चाहिए कि श्रीरामकृष्ण ने विश्व को जो सन्देश दिया, स्वामी विवेकानन्द ने उसी की बड़ी गर्व के साथ घोषणा की। उन्होंने कहा, "मेरे पास सबके लिए एक महान् सन्देश है, और यदि भगवान् ने मुझे समय दिया, तो दुनिया के कोने कोने में इस महान् सत्य का प्रचार करूँगा।" और वह सत्य यहा था कि 'जीव शिव ही है'। यह सत्य मात्र भारतवासियों का ही कल्याण नहीं साधित करेगा, अपितु पूरे विश्व की सहायता करेगा, क्योंकि आज सारा संसार ही एक प्रबल विक्षोभ की अवस्था में से गुजर रहा है।

अब, पिछड़े लोगों को ऊपर उठाने का यह जो कार्य है, उसके लिए स्वामीजी ने देश के युवकों पर अपनी आशा की निगाह रखी थी। अपने कई व्याख्यानों में उन्होंने यह कहा कि उनकी आशा युवकों पर है। अतएव भारत का समूचा युवावर्ग इस महान् व्यत्ती कि आशा को पूर्ण करने के लिए सामने आवे। वह पहले समझ ले कि स्वामीजी ने क्या कहा है तथा देश को फिर से उठाने के लिए उसे निश्चित रूप से क्या करना है। तुम लोग यहाँ कुछ दिन एक साथ रहोगे, इन समस्याओं

पर चर्चा करोगे, स्वामीजी के सन्देश पर विचार-विनिमय करोगे तथा एक निष्कर्ष पर पहुँचकर कार्यप्रणाली ठीक करोगे, जिसके अनुसार तुम वापस लौटने के बाद अपने अपने क्षेत्र में देश की उन्नति के लिए कार्य कर सको। यही इस सम्मेलन का उद्देश्य है। मैं आशा करता हूँ कि तुम लोग उस उद्देश्य की पूर्ति करोगे।

आजकल हम बहुधा सुना करते हैं कि देश का पतन उसके धर्म के कारण हुआ है, धर्म पर बहुत बल देने के कारण देश बिगड़ गया, यदि धर्म पर उतना जोर न दिया जाता, तो देश का भला होता। पर जिन लोगों ने यह बात फैलायी, वे नहीं जानते थे कि धर्म वास्तव में क्या है। वे लोग कुछ सामाजिक रूढ़ियों को, कुछ अन्धविश्वासों को धर्म समझते थे। पर वह तो धर्म नहीं था, वह तो धर्म पर आकर जम गया बुरादा था, जैसे लोहे पर जंग जम जाता है। पहले जंग को साफ करो तो लोहा चमकने लगेगा। इसी प्रकार धर्म पर कई ऐसे अन्धविश्वास और कुसंस्कार आकर चिपक गये हैं, जो धर्म नहीं है। हम गलती से इन्हें धर्म मान लेते हैं। पर श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द आकर हमें दाने और भूसे का अन्तर समझा देते हैं। वे बताते हैं कि धर्म यथार्थतः क्या है और क्या नहीं है। यदि सचमूच धर्म रहे, तो कोई पतन नहीं हो सकता। यथार्थ धर्म के पालन से किसी प्रकार की गिरावट सम्भव ही नहीं है। हम सच्चे धर्म का पालन नहीं कर रहे हैं, इसीलिए दुनिया के सामने यह महान् संकट उपस्थित है। हमें जान लेना होगा कि धर्म वास्तव में क्या है और धर्म के वे सिद्धान्त कौनसे हैं, जो हमारी उन्नति में सहायक होंगे। हमें अधिक विचारशील होना होगा। केवल यह कहते रहना कि धर्म ने हमें बिगाड़ दिया है और हमें पता नहीं कि उसने किस प्रकार बिगाड़ा है, किसी काम का न होगा। क्या तुमने देश के विगत तीन हजार साल का इतिहास पढ़ा है ? हम केवल धर्म की ही बदौलत इसी लम्बी अवधि में भी एक राष्ट्र के रूप में बचे रहे हैं, जबकि दूसरे महान् राष्ट्र पृथ्वी से लुप्त हो गये। धर्म में ऐसी कोई विलक्षणता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "यदि धर्म ठीक है, तो सब कुछ ठीक है।" विशेषकर भारत में, धर्म के आधार के बिना कुछ नहीं

किया जा सकता। तो, यह जो कहा जाता है कि धर्म कुछ नहीं है, यह सब बकवास है, केवल थोथी बात है। हमें करना यह है कि धर्म का जो गलत रूप लोगों के सामने रखा गया, उसे दूर करना है। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो विनाश अवश्यम्भावी है। हम अपने धर्म या अपनी धार्मिक दृढ़ता को गँवाने का जोखिम नहीं उठा सकते। वे दोनों बातें नितान्त आवश्यक हैं और हमारी संस्कृति का मूलभूत स्वरूप हैं। अतएव इस सम्मेलन में आये युवकों को हमें अपनी संस्कृति की सही समझ देनी है, जिससे वे उसे आत्मसात् कर भारत के सच्चे नागरिक बनें – किसी अन्य देश के नहीं। वे इन समस्याओं पर विचार करें और अपनी कठिनाइयों को संन्यासियों एवं गुरुजनों के समक्ष रखें तथा स्वामी विवेकानन्द को समझने की चेष्टा करें। स्वामीजी के ग्रन्थों को अच्छी तरह से पढ़ो, देखोगे उससे दूसरों के लिए काम करने की प्रेरणा मिलेगी। यह प्रेरणा ही नितान्त प्रयोजनीय है। सुख दूसरों के लिए काम करने में निहित है। अतएव यदि हम दूसरों के लिए काम कर सकें, तो हमें सुख मिलेगा और वही हमारी आध्यात्मिक प्रगति होगी।

मैं आज के इस अवसर पर स्वामी विवेकानन्द से यही प्रार्थना करता हूँ कि वे तुम लोगों पर अपने आशीर्वाद का वर्षण करें तथा तुम्हारे सहायक बनें, जिससे तुम उन्हें ठीक ठीक समझ सको एवं उनके निर्देशानुसार भारत का नवनिर्माण कर सको।

अस्पताल को मन्दिर के समान देखो*

इस स्वर्ण-जयन्ती समारोह के अवसर पर श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए इस नये भवन को समर्पित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। प्रतिष्ठान के सचिव ने मुझसे दो शब्द कहने का भी अनुरोध किया है। सो वह मैं कर रहा हूँ।

एक बड़े भोज में लोगों को पहले कड़वी चीजें परोसी जाती है – जैसी नीम पत्ती, सुक्तो‡ आदि। मैं आप लोगों को वही परोसूँगा। बाद में हमें दूसरे वक्ताओं से बढ़िया बढ़िया चीजें मिलेंगी।

इस अवसर पर मैं आपका ध्यान इस संस्था के आदर्श की ओर खीचूँगा। यह अस्पताल नहीं है, यह एक मन्दिर है। हम यहाँ लोगों की मात्र चिकित्सा नहीं करते अपितु उनकी सेवा करते हैं। स्वामीजी ने सेवा के माध्यम से ईश्वर-साक्षात्कार का आदर्श सबके सामने रखा है। हमें केवल अपनी मानसिकता में परिवर्तन लाना है। काम तो हम वही करेंगे, पर हमारी मनोवृत्ति बदल जाएगी। उससे हमें आध्यात्मिक प्रगति में सहायता मिलेगी। इससे हमारे लिए ईश्वर-साक्षात्कार सुगम हो जाएगा। अन्य कोई भी पथ इसके समान सुगम नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने यह कहकर कि कर्म करना मानो जीव की शिव के रूप में सेवा करना है, इस पथ को सुगम बना दिया है। यही बात श्रीरामकृष्ण ने भी कही है। ऐसी मनोवृत्ति आप लाइए। देखेंगे, आपको निश्चित रूप से आध्यात्मिक लाभ मिलेगा। बस, यही मुझे कहना था।

❖ ❖ ❖

---

* रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कलकत्ता के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के उद्घाटन के अवसर पर २४ जुलाई १९८२ को दिया गया भाषण। ‡ एक प्रकार की बंगाली तरकारी।

श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर और सेवा का आदर्श*

मैं तो यहाँ विभिन्न वक्ताओं द्वारा दिये जानेवाले भाषणों का आनन्द लेने के उद्देश्य से आया था, पर मनुष्य सोचता एक है और भगवान् करते दूसरा है। तभी तो मुझे अध्यक्षपद सँभालने के लिए कहा गया है और अध्यक्षीय भाषण देने के लिए भी।

इस प्रतिष्ठान का प्रारम्भ रामकृष्ण मिशन ने आज से पचास वर्ष पहले स्वामी दयानन्द की देखभाल में किया था। एक छोटा सा प्रसूति केन्द्र इन पचास वर्षों में आज एक बहुत बड़ी संस्था बन गया है, जो अब कलकत्ते की प्रमुख संस्थाओं में से एक है। यह स्वामी दयानन्द की समर्पित सेवा और त्याग-भावना के द्वारा ही सम्भव हो सका, जो तब इस संस्था के प्रमुख थे और जिनके हृदय में पीड़ितजनों के लिए असीम प्यार था।

समर्पण का यह भाव उन डाक्टरों, नर्सों तथा अन्य कर्मचारियों में भी संचारित हुआ, जो इस संस्था में काम करते थे। सबने उनसे सेवा का यह भाव प्राप्त किया। जैसे जैसे काम बढ़ता गया, अधिकाधिक डाक्टर, नर्स आदि इस संस्था के साथ जुड़ते गये और उन सबने भी स्वामी दयानन्द से सेवा की यह अनुप्रेरणा ली। यह समर्पित भाव से कार्य करने का ही सुफल है कि संस्था दक्षतापूर्वक सुचारु रूप से चल रही है।

विगत पचास वर्षों में संस्था के सामने कई कठिनाइयाँ आयीं, पर समर्पित भाव से काम करने के परिणामस्वरूप वे सब बाधाएँ पार कर ली गयीं। मैं कामना

---

* रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कलकत्ता के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के अवसर पर २४ जुलाई १९८२ को दिया गया अध्यक्षीय भाषण।

करता हूँ तथा श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करता हूँ कि समर्पण-भाव का जो पौधा स्वामी दयानन्द रोप गये, वह समय पाकर बढ़ता जाए तथा जो लोग इस संस्था के साथ काम करने के लिए जुड़ रहे हैं एवं भविष्य में भी जुड़ेंगे, उन सबको वह अनुप्राणित करता रहे।

हम पूर्ववर्ती वक्ताओं से सुन ही चुके हैं कि इस प्रतिष्ठान के पीछे आधार के रूप में, श्रीरामकृष्ण की वह सीख काम कर रही है, जिसमें उन्होंने 'जीव की शिवज्ञान से सेवा' करने की बात कही है। जो लोग यहाँ कार्य कर रहे हैं, उन सबके लिए यह श्रीरामकृष्ण का सन्देश है। इसे आचरण में उतारने की चेष्टा करनी चाहिए।

लोग कहते हैं कि यह एक अस्पताल है, पर मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तो इसे एक मन्दिर मानता हूँ, जहाँ एक महान् उपासना चली है – नर में नारायण की उपासना। यह एक व्यक्तिगत भाव है, जिसे वस्तुगत रूप नहीं दिया जा सकता। 'जीव शिव है' तथा 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – ये द्विविध आदर्श रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन को स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये गये हैं। स्वामीजी ने चाहा है कि इन आदर्शों का सहारा ले संन्यासी देश को ऊपर उठाने के लिए आगे आवे तथा राष्ट्र-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम करें।

हमारा राष्ट्रीय आदर्श मोक्ष है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए पहले लोग अरण्य में या किसी निभृत गुफा में चले जाते थे, जिससे ध्यान करने में सहायता मिले। वे कर्म का त्याग कर देते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि उससे उनका मन बहिर्मुख हो रहा है। इसलिए तब आध्यात्मिक जीवन में कर्म को कोई स्थान नहीं था, केवल ध्यान को ही मान्यता थी। पर श्रीरामकृष्ण तो एक महान् समन्वयक थे, उन्होंने कर्म और ध्यान दोनों का समन्वय किया है। उनके अनुसार ईश्वर सर्वातीत भी है और सर्वान्तर्यामी भी। हम उसके सर्वातीत पक्ष का ध्यान करते हैं तथा मनुष्य में समाये उसके सर्वान्तर्यामी रूप की उपासना भी।

कर्म का यह (जीव शिव है) आदर्श हमारे द्वारा राष्ट्रीय जीवन के शिक्षा,

चिकित्सा-सेवा आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहृत होता है। जब भी कोई राष्ट्रीय आपदा आती है उस समय हमारे संघ के द्वारा जो राहत कार्य किये जाते हैं, उनके पीछे भी हमारा यही भाव रहता है। इन राहत कार्यों में हम दूसरे संगठनों से भी सहायता लेते हैं, उनके साथ सहयोग करते हैं, क्योंकि मुख्य ध्येय तो यही है कि लोगों को राहत मिले।

हमने विदेशी संगठनों के साथ साथ बहुत से भारतीय संगठनों के साथ सहयोग किया, फिर प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के साथ भी; पर इन सभी दशाओं में हम एक शर्त रखते हैं, – वह यह कि हमें अपने अनुभव के आधार पर काम करने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए, विशेषकर उन लोगों के चुनाव में जो सहायता प्राप्त करेंगे। यदि कोई इसमें बाधक होता है, तो हमारा ऐसे संगठन को सहयोग देना सम्भव नहीं हो पाता। यदि यह स्वतन्त्रता हमें मिली है, तो हम विगत अस्सी वर्षों में अनेक संगठनों के साथ सहयोग करते रहे हैं।

आजादी मिलने के तुरन्त पहले, १९४३-४६ में, इस प्रदेश में भयानक अकाल पड़ा था। परंतु उसे अकाल न कह 'सुखा' कहा गया। उस समय एक धनिक व्यक्ति ने बहुत बड़ी राशि देनी चाही और कहा, "स्वामीजी यह पैसा लीजिए, पर एक शर्त है, इस पैसे से आप किसी मुसलमान की सहायता नहीं करेंगे।" हमने उत्तर दिया, "इस शर्त के साथ हम आपका पैसा नहीं स्वीकार कर सकते।"

अभी हाल में मेरे सहयोगी स्वामी आत्मस्थानन्द को एक धनी व्यक्ति ने बड़ी रकम दान में देनी चाही,पर एक शर्त भी रखी कि वह धन केवल शाकाहारियों के लिए काम में लाया जाना चाहिए, मांसाहारियों के लिए नहीं। उस दान को भी अस्वीकार कर दिया गया। अतः ऊपर बतायी गयी शर्त के साथ हम सभी सम्बन्धित जनों के साथ हर क्षेत्र में सहयोग कर रहे हैं। हमारा मुख्य ध्येय है गरीब की सहायता करना। हम न तो अपने अपने नाम-यश के लिए काम करते हैं, न और किसी बात के लिए, हम तो केवल गरीब को राहत पहुँचाना चाहते हैं।

मैं आपको और एक बात बताना चाहूँगा – स्वामीजी चाहते थे कि हम भारत का पुनर्गठन करें। उन्होंने पिछड़े तबके के लोगों को उठाने की बात कही। उनकी आर्थिक दशा में सुधार लाना चाहिए, उन्हें शिक्षा देनी चाहिए और आध्यात्मिक सत्यों की बात सिखानी चाहिए। एक हजार साल से भी अधिक उन लोगों को इन सब बातों से वंचित रखा गया है। फल यह है कि वे जहाँ थे वहीं बने हुए हैं। परिणाम यह हुआ कि हमें हजार वर्ष की गुलामी मिली, क्योंकि इन लोगों को इसमें कोई रुचि न थी कि राज्य राम का है अथवा रावण का है – यह उनके लिए महत्त्वहीन बात थी। उनके लिए कोई अन्तर न पड़ता था कि एक भारतीय राज्य करता है या एक विदेशी, क्योंकि उनकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं था। जनसाधारण को किसी प्रकार की सहायता नहीं मिली, इसलिए स्वाभाविक ही उनकी दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। इससे हमें एक सबक मिला है। हमें वह सबक भूलना नहीं चाहिए और वही गलती दुहरानी नहीं चाहिए। अतएव मैं सबको, विशेषकर धनिकों को, आमंत्रित करता हूँ कि वे आगे आवें और भारत का नवनिर्माण करें। पिछड़े हुए लोगों की सहायता करना ही एकमात्र उपाय है। इससे पिछड़े हुए लोगों का भला होगा, साथ ही देश का भी। अन्ततोगत्वा उससे धनिकों का भी भला होगा। यह बात मुझे और समझानी न होगी।

मैं समस्त धनी व्यक्तियों से यह अपील करता हूँ। एक बार जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में थे तब एक करोड़पति उनसे मिलने आये। उनसे बातचीत करते हुए स्वामीजी ने कहा, "जो पैसा तुमने कमाया है, वह तुम्हारा नहीं है, वह गरीबों का है और तुम मात्र उसके ट्रस्टी हो।" तो, हमारे देश में जो लोग भारत का नवनिर्माण करना चाहते हैं, उन्हें इस भावना का स्मरण रखना चाहिए। एक बार श्री माँ सारदा देवी एक भक्त से वार्तालाप के बीच यह कह उठीं, "जार आछे से मापे, जार नेइ से जपे" अर्थात् जिसके पास पैसा है वह गरीबों को दे, जिसके पास नहीं है वह भगवान् का भजन करे। अतएव सम्पन्न लोगों को गरीबों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए।

भारत के इस नवनिर्माण का यह मतलब नहीं कि उच्चवर्ण के, सुसंस्कृत जाति के लोगों को अछूत के स्तर तक नीचे खींचकर गिरा दिया जाए, बल्कि यह कि अछूत को अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति के स्तर तक ऊपर उठाया जाय। अन्यथा सारा देश ही अछूतों से भर जाएगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोगों को ब्राह्मणत्व तक ऊपर उठना है। बहुधा यह बात भुला दी जाती है, और इसलिए कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। मुख्य बात यह है कि लोगों को आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक इन चारों क्षेत्रों में उच्चतर धरातल पर उठाना है। इन सबमें आर्थिक उन्नति सबसे जरूरी है, क्योंकि, जैसा कि श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, भूखे पेट को धर्म नहीं रुचता।

पहले पेट भरो। इसके लिए आर्थिक उन्नति अत्यावश्यक है। जो लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, उनके द्वारा यह कार्य आसानी से सध सकता है।

मनुष्य केवल रोटी के बल पर नहीं जीता। केवल आर्थिक उन्नति पर्याप्त नहीं है। हमें उन लोगों को दूसरी चीजें भी देनी होंगी। इसीलिए स्वामीजी ने अनुभव किया कि लोगों का पहले आर्थिक स्तर सुधारा जाए, फिर उनका बौद्धिक स्तर और अन्त में उनका आध्यात्मिक स्तर।

यही स्वामीजी का मनोभाव है। मैं आशा करता हूँ कि उनकी ही कृपा से हम उनकी आशाओं की पूर्ति के यंत्रस्वरूप बनेंगे।

❖ ❖ ❖

स्वामीजी की आँखों से देखो*

यह मुख्यतः युवकों का सम्मेलन है, इसलिए यहाँ जो मैं कहूँगा, वह युवकों के लिए ही होगा। मेरे युवा मित्रों ! तुम लोग भिन्न भिन्न स्थानों से यहाँ आये हो, पर क्यों आये हो ? मैं यह मान लेता हूँ कि तुम लोगों ने स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में सुना है और कुछ पढ़ा भी है। सम्भवतः इसी के कारण तुमने उनसे प्रेम करना और उनके प्रति आदरभाव रखना शुरू किया है। तुम यहाँ इसलिए आये हो कि तुम्हें लगता है कि यहाँ आकर तुम उनके बारे में और अधिक जान सकोगे। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम निराश नहीं होगे। तुम्हारे सामने जो लोग कुछ कहेंगे, उनमें कुछ ऐसे वरिष्ठ संन्यासी हैं, जिन्हें श्रीरामकृष्ण के शिष्यों के श्रीचरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। फिर उनमें ऐसे भी बड़े विद्वान् लोग हैं, जिन्होंने स्वामीजी के ग्रंथों को अच्छी तरह पढ़ा है। इन सब लोगों ने स्वामीजी को जिस प्रकार समझा है, वही वे तुम लोगों को बताएँगे।

जब हम श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द पर विचार करते हैं, तो पहला प्रश्न यह उठता है कि भारत के पुनर्निर्माण में क्या उनकी कोई देन हो सकती है ? मैं कहूँगा कि कृपया इतिहास – विश्व-इतिहास पढ़ो। जहाँ भी कोई महती सभ्यता पैदा हुई है, तुम उसके पीछे किसी महापुरुष को देखोगे, जिसके जीवन और उपदेशों ने उस सभ्यता को आकार प्रदान किया। यह बात सभी महान् सभ्यताओं पर लागू होती है। चाहे वह ईसाई सभ्यता हो या इस्लाम, जैन हो या सिन्धु – हर सभ्यता के साथ ऐसा ही हुआ। पर भारत के सम्बन्ध में उल्लेखनीय

---

* रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता द्वारा रवीन्द्र सरोवर मुक्तमंच में २६ और २७ फरवरी १९८३ को आयोजित युवा सम्मेलन के अवसर पर २६ फरवरी को बँगला में दिया गया व्याख्यान।

बात यह है कि उसकी सभ्यता विगत लगभग पाँच हजार वर्षों तक अबाधित रूप से चली आयी है। यह सही है कि उसमें उत्थान और पतन होते रहे हैं, पर यह विचित्रता रही है कि जब भी उसमें तनिक – सी गिरावट आयी, तो एक महान् आत्मा, ईश्वर के कोई अवतार आ गये और उसमें नयी शक्ति फूँक दी। इसी भाँति यहाँ एक के बाद एक आये रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध, शंकर और चैतन्य, तथा अन्त में हमारे अपने युग में आये स्वामीजी के साथ रामकृष्ण और सारदादेवी। हमारी परम्परा के अनुसार उनके आने का एक प्रयोजन है – उनका आगमन अपने साथ भारत में नवजागरण, एक नयी सभ्यता का उत्थान लेता आएगा। उनके उपदेशों से अपने आप ही ऐसा साधित होगा, उसके लिए अन्य किसी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होगी। यदि हम अपने पाँच हजार वर्ष पुराने इतिहास के क्रम को देखें, तो हमें यह बात समझ में आ जाएगी कि ये दो महान् आत्माएँ किसलिए आयीं तब हम यह समझ पाएँगे कि उनको आना ही पड़ता, क्योंकि समय की माँग ही उनके आगमन का पथ प्रशस्त कर रही थी। दूसरा ऐसा कोई उपाय नहीं था, जिसके द्वारा वह संकट दूर हो सकता जिसने देश को घेर रखा था। भारत उठेगा, पर उनके द्वारा बताये रास्ते पर चलकर ही उठेगा। दूसरे लोग कुछ भी कहते रहें, रास्ता केवल यही है। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द को समझें। पर श्रीरामकृष्ण को समझना बड़ा कठिन है, वे हमारी साधारण समझ से बहुत परे प्रतीत होते हैं। वे तो उच्च वोल्टेज के विद्युत् के समान हैं, जिसका हम उपयोग नहीं कर सकते। हम उसका उपयोग तभी कर पाते हैं, जब हम उसे गिराकर ४४० वोल्टेज तक लाते हैं और तब हम कई प्रकार से उसका उपयोग कर सकते हैं, – पंखा, प्रकाश, रसोई, पम्प एवं अन्य मशीनों को चलाने के लिए उच्च वोल्टेज का उपयोग करना आसान बात नहीं है। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में यही बात है। हम उन्हें नहीं समझ सकते, केवल स्वामीजी के माध्यम से ही उन्हें समझा जा सकता है। स्वामीजी उन्हें हमारे लिए हमारे स्तर तक उतार लाते हैं, जिससे कि उनसे प्रेरणा प्राप्त कर भारतीय समाज

के नवोत्थान के लिए हम कार्य कर सकें। अतएव आओ, पहले हम देखें कि स्वामीजी का क्या कहना है। स्वामीजी ने केवल धर्म पर ही अपने विचार व्यक्त नहीं किये, अपितु समाज, शिक्षा यहाँ तक कि राजनीति पर भी अपने विचार रखे। मुझे प्रसन्नता है कि तुम लोग इन सब विषयों पर स्वामीजी का अभिमत जानना चाहते हो। जो दो दिन तुम यहाँ रहोगे, तुम इन विषयों पर भाषण सुनोगे। वे भाषण तुम्हारे मन में प्रश्नों को जन्म दे सकते हैं। उन प्रश्नों के उत्तर पूछने में किसी प्रकार का संकोच न करना। बारम्बार पूछना, जब तक कि तुम पूरी तरह सन्तुष्ट न हो जाओ। वक्तागण यह तो जानें कि कौनसे संशय तुम्हें सता रहे हैं। तुम उनको अपनी बात स्पष्ट रूप से रखने देने में मदद देना। केवल इसी प्रकार विचारों के स्पष्ट और खुले आदान-प्रदान से काम बन पाएगा, जिसमें एक ओर वरिष्ठ संन्यासी एवं विद्वज्जन रहेंगे तथा दूसरी ओर तुम मेरे तरुण मित्रगण। घर लौटने से पहले तुम ऐसा बहुत कुछ सीख पाओगे, जो नया है और जो तुम्हारी बहुत सी शंकाओं को दूर कर देगा। घर लौटकर तुम इन बातों पर और भी चिन्तन करना। पर मात्र चिन्तन पर्याप्त न होगा, केवल बोलना भी पर्याप्त नहीं है। जो तुम सीखते हो, उसे व्यवहार में लाना होगा। अपने बीच कुछ दल बना लो और अपने अड़ोस पड़ोस में स्वामीजी द्वारा बताये गये पथ के अनुसार देश के हित के लिए सामुदायिक सेवा का कोई काम हाथ में ले लो। जहाँ भी मुझे कुछ कहने का अवसर मिलता है, मैं एक अपील किया करता हूँ। वही अपील मैं यहाँ भी करूँगा। वह यह कि जिन तरुणों ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है और जो परिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए संसार में प्रवेश ले ही रहे हों, उनसे मैं कहता हूँ कि कृपया देश के लिए एक वर्ष का त्याग करो, जिससे उसकी उन्नति हो। यदि तुम सभी ऐसा करोगे, तो देश का नवोत्थान निश्चित है। एक वर्ष कोई लम्बी अवधि नहीं है। इसीलिए मैं तुमसे यह त्याग करने की बात कह रहा हूँ। उन लोगों की सेवा करो, जिनको उसकी आवश्यकता है – ऐसे लोगों की, जो निरक्षर हैं, दलित हैं, जिन्हें दिन में एक जून भी पेट भर भोजन नहीं मिलता, जो

लोग सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इन लोगों को उठाना ही होगा। वे अपना स्वाभिमान खो चुके हैं, वे उसकी प्राप्ति अवश्य करें। जब तक देश की जनता उपेक्षित पड़ी रहेगी, देश का भविष्य अन्धकारमय ही बना रहेगा। जनसाधारण को ऊपर उठाने के इस कार्य में हम सभी को हाथ लगाना होगा। यदि हम अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ेंगे, तो परिणाम क्या होगा इसकी कल्पना करना कोई कठिन बात नहीं। अखबारों में जो समाचार हम पढ़ते हैं, वे मानो इस बात का पूर्वाभास हमें दे रहे है कि वर्तमान स्थिति यदि अधिक दिनों तक बनी रही तो क्या होगा। यदि लोग भूख से पीड़ित बने रहे, तो समाज पर उसकी दुखद प्रतिक्रियाएँ होंगी ही। इस अवस्था को शीघ्र से शीघ्र दूर करना चाहिए, अन्यथा भारत में जिन बातों को हम सर्वाधिक अपने हृदय में सँजोकर रखते हैं, उनका कुछ भी बचा न रहेगा। तो यह हमारे हित में है, देश के हित में है कि हम जनसाधारण की सेवा करें। इसलिए मैं तुम लोगों से उन लोगों के लिए कम से कम एक साल देने का अपील कर रहा हूँ। हम इसी प्रकार उन लोगों को उनका मौलिक मानवाधिकार वापस दे सकते हैं तथा उनकी अवस्था को सुधारकर देश को मजबूत बना सकते हैं। आज स्थिति जैसी है, उसमें यह भय भी बना हुआ है कि बाहर की शक्तियाँ कहीं हमारी कमजोरी का लाभ न उठा लें। वे तो, जैसी कि कहावत है, घर की लगी आग में हाथ सेंकने की कोशिश करेंगे। इस संकट के सन्दर्भ में जो योजना मैंने तुम्हारे सामने रखी है, उसका महत्त्व और भी अधिक हो उठता है।

मेरी प्रार्थना है कि श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा तुम लोगों को आशीर्वाद दें; तुम उनकी आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप अपने को गढ़ ले सको तथा स्वामीजी ने जो दायित्व तुम पर न्यस्त किया है उसका वहन कर सको।

सेवा का आदर्श*

इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि परसों आप सबके साथ मुझे इस मन्दिर की प्रतिष्ठा तथा इसमें श्रीरामकृष्णदेव के विग्रह की स्थापना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हमारे मन्दिरों में यह पहला ही मन्दिर है, जहाँ पर हिन्दू शास्त्रीय परम्परा के अनुसार कास्य-मूर्ति की स्थापना की गयी है। अब तक हमारे यहाँ संगमर्मर की ही मूर्तिया होती थीं।

तीन वर्ष पूर्व मुझे इस मन्दिर के शिलान्यास का भी सौभाग्य मिला था, जब अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों ने सांस्कृतिक संस्थान तथा औषधालयभवनों के शिलान्यास किये थे। पूर्व रात्रि में वर्षा हो जाने के कारण उस दिन यह मैदान वीरान नजर आ रहा था। फिर यत्र-तत्र पानी से भरे हुए गड्ढे दिखायी दे रहे थे। पर आज तो मैं एकदम कायापलट देख रहा हूँ। यह सारा प्रागंण सुन्दर सुन्दर भवनों एवं मन्दिर से सज्जित हो बड़ा ही आकर्षक बन गया है। यह सब शासन एवं जनता के सहयोग तथा स्वामी रंगनाथानन्द की कर्मठता से ही सम्भव हो सका है।

इस मन्दिर को 'श्रीरामकृष्णदेव का सार्वजनीन मन्दिर' कहा गया। यह 'सार्वजनीन' विशेषण क्यों लगाया गया ? भारत में तो बहुत से मन्दिर हैं, फिर इसी एक मन्दिर को क्यों सार्वजनीन कहा जाए ? वास्तव में, श्रीरामकृष्ण के मन्दिर जहाँ भी हों, सार्वजनीन ही कहे जाने योग्य हैं, क्योंकि वे सब धर्म के अनुयायियों के लिए खुले हैं। हम सभी जानते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने अपनी अपरोक्ष अनुभूति के द्वारा ईश्वर की सत्ता केवल प्रमाणित ही नहीं की और इस प्रकार

---

* रामकृष्ण मठ, हैदराबाद में श्रीरामकृष्णदेव के सार्वजनीन मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ६-२-१९८१ को अँगरेजी में दिया गया व्याख्यान.

लोग सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इन लोगों को उठाना ही होगा। वे अपना स्वाभिमान खो चुके हैं, वे उसकी प्राप्ति अवश्य करें। जब तक देश की जनता उपेक्षित पड़ी रहेगी, देश का भविष्य अन्धकारमय ही बना रहेगा। जनसाधारण को ऊपर उठाने के इस कार्य में हम सभी को हाथ लगाना होगा। यदि हम अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ेंगे, तो परिणाम क्या होगा इसकी कल्पना करना कोई कठिन बात नहीं। अखबारों में जो समाचार हम पढ़ते हैं, वे मानो इस बात का पूर्वाभास हमें दे रहे है कि वर्तमान स्थिति यदि अधिक दिनों तक बनी रही तो क्या होगा। यदि लोग भूख से पीड़ित बने रहे, तो समाज पर उसकी दुखद प्रतिक्रियाएँ होंगी ही। इस अवस्था को शीघ्र से शीघ्र दूर करना चाहिए, अन्यथा भारत में जिन बातों को हम सर्वाधिक अपने हृदय में सँजोकर रखते हैं, उनका कुछ भी बचा न रहेगा। तो यह हमारे हित में है, देश के हित में है कि हम जनसाधारण की सेवा करें। इसलिए मैं तुम लोगों से उन लोगों के लिए कम से कम एक साल देने का अपील कर रहा हूँ। हम इसी प्रकार उन लोगों को उनका मौलिक मानवाधिकार वापस दे सकते हैं तथा उनकी अवस्था को सुधारकर देश को मजबूत बना सकते हैं। आज स्थिति जैसी है, उसमें यह भय भी बना हुआ है कि बाहर की शक्तियाँ कहीं हमारी कमजोरी का लाभ न उठा लें। वे तो, जैसी कि कहावत है, घर की लगी आग में हाथ सेंकने की कोशिश करेंगे। इस संकट के सन्दर्भ में जो योजना मैंने तुम्हारे सामने रखी है, उसका महत्त्व और भी अधिक हो उठता है।

मेरी प्रार्थना है कि श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा तुम लोगों को आशीर्वाद दें; तुम उनकी आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप अपने को गढ़ ले सको तथा स्वामीजी ने जो दायित्व तुम पर न्यस्त किया है उसका वहन कर सको।

सेवा का आदर्श *

इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि परसों आप सबके साथ मुझे इस मन्दिर की प्रतिष्ठा तथा इसमें श्रीरामकृष्णदेव के विग्रह की स्थापना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हमारे मन्दिरों में यह पहला ही मन्दिर है, जहाँ पर हिन्दू शास्त्रीय परम्परा के अनुसार कास्य-मूर्ति की स्थापना की गयी है। अब तक हमारे यहाँ संगमर्मर की ही मूर्तिया होती थीं।

तीन वर्ष पूर्व मुझे इस मन्दिर के शिलान्यास का भी सौभाग्य मिला था, जब अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों ने सांस्कृतिक संस्थान तथा औषधालयभवनों के शिलान्यास किये थे। पूर्व रात्रि में वर्षा हो जाने के कारण उस दिन यह मैदान वीरान नजर आ रहा था। फिर यत्र-तत्र पानी से भरे हुए गड्ढे दिखायी दे रहे थे। पर आज तो मैं एकदम कायापलट देख रहा हूँ। यह सारा प्रागंण सुन्दर सुन्दर भवनों एवं मन्दिर से सज्जित हो बड़ा ही आकर्षक बन गया है। यह सब शासन एवं जनता के सहयोग तथा स्वामी रंगनाथानन्द की कर्मठता से ही सम्भव हो सका है।

इस मन्दिर को 'श्रीरामकृष्णदेव का सार्वजनीन मन्दिर' कहा गया। यह 'सार्वजनीन' विशेषण क्यों लगाया गया ? भारत में तो बहुत से मन्दिर हैं, फिर इसी एक मन्दिर को क्यों सार्वजनीन कहा जाए ? वास्तव में, श्रीरामकृष्ण के मन्दिर जहाँ भी हों, सार्वजनीन ही कहे जाने योग्य हैं, क्योंकि वे सब धर्म के अनुयायियों के लिए खुले हैं। हम सभी जानते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने अपनी अपरोक्ष अनुभूति के द्वारा ईश्वर की सत्ता केवल प्रमाणित ही नहीं की और इस प्रकार

---

* रामकृष्ण मठ, हैदराबाद में श्रीरामकृष्णदेव के सार्वजनीन मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ६-२-१९८१ को अँगरेजी में दिया गया व्याख्यान.

विज्ञान एवं दर्शन की प्रणालियों में मेल ही नहीं बिठाया, अपितु उसी साक्षात् अनुभूति के माध्यम से यह भी प्रदर्शित किया कि सारे के सारे धर्म ईश्वरसाक्षात्काररूप उसी एक लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। इसीलिए श्रीरामकृष्ण को 'सर्व-धर्म-स्वरूप' कहा जाता है। उनके मन्दिर में सब लोग आकर उपासना कर सकते हैं – चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हों। और वे अपने ही धर्म के बने रहते हैं। एक हिन्दू हिन्दू बना रहता है, एक ईसाई, ईसाई और एक मुसलमान, मुसलमान। वे तो यह देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण के जीवन में उनके अपने शास्त्रों के आदर्श मूर्तरूप हो उठे हैं। इस दृष्टि से यह मन्दिर निश्चय ही एक सार्वजनीन मन्दिर है। फिर इसमें सभी जाति, वर्ण और देश के लोग आ सकते हैं। यह मन्दिर समाज के सभी स्तर के लोगों के लिए – धनी-निर्धन, पण्डित-अज्ञानी, और भारत में विशेषकर ब्राह्मण और शूद्र जिन्हें अज्ञानवश अछूत कहा जाता है – सबके लिए खुला है।

श्रीरामकृष्ण ने धर्म और उपासना के परम्परागत द्वन्द्व को मिटाने के लिए एक और नया भाव दिया। अब तक हम लोग भी यही मानते थे कि ईश्वर के साक्षात्कार के लिए हमें कर्म छोड़कर निर्जन में चले जाना होगा और उसका ध्यान करना होगा, जिससे हमारा मन ध्यान में निवातनिष्कम्प प्रदीप-शिखा की भाँति स्थिर हो जाए। मन के उस प्रकार स्थिर होने पर हमें ईश्वर की अनुभूति होती है। और चूँकि कर्म से मन चंचल हो जाता है, इसलिए उसे छोड़ने की सीख दी जाती थी। यही परम्परागत भाव था। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने घोषणा की, "नहीं, तुम्हें कर्म का त्याग करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह ईश्वर सर्वातीत भी है और सर्वानुस्यूत भी, तथा उसकी उपासना इन दोनों रूपों में की जा सकती है।" जब आप ईश्वर के सर्वातीत पहलू पर ध्यान करते हैं, तो वह एक प्रकार की उपासना है और जब आप मानवता की सहायता के लिए आगे बढ़ निःस्वार्थ भाव से उसकी सेवा करते हैं तो वह उपासना का दूसरा प्रकार हो जाता है, क्योंकि जीव वस्तुतः शिव ही है। आप मन्दिरों में जाकर देवता की उपासना पाषाणमूर्ति

में करते हैं, उसके लिए हमें प्राणप्रतिष्ठा करनी पड़ती है, जबकि मनुष्य में देवता की प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं, वह तो चलता-फिरता मन्दिर है और उसमें देवता स्वयं होकर विराजित हो गया है। अतएव ऐसे पीड़ित और असहाय मनुष्यों की विविध प्रकार से उपासना करो, तुम अवश्य ही ईश्वर का साक्षात्कार करोगे। उसके लिए कर्म को छोड़ने की आवश्यकता नहीं।

इस आदर्श का जो गहरा मर्म था, वह स्वामी विवेकानन्द के अन्तःकरण में विशेष रूप से उद्भासित हो उठा था और वे कह उठे थे, "लो यह मार्ग है।" मैं चाहता हूँ कि सभी भारत को फिर से गढ़ने का संकल्प लें। धार्मिक आदर्शों और अपनी युगों प्राचीन संस्कृति के बिना मात्र एक धनी भारत विशेष काम का नहीं होगा। हमें अपने मोक्षरूप आदर्श एवं अपनी संस्कृति से लगे रहना होगा, और इसके लिए दूसरों के कल्याण हेतु कार्य करना एक नवीन उपाय है। इस प्रकार अपनी समस्त गतिविधियों के बीच ईश्वर का साक्षात्कार कर लेना ही जीवन का आदर्श है। इसकी उपलब्धि जीव में शिव के दर्शन करते हुए उसकी विविध प्रकार की सेवा के द्वारा हो सकती है। स्वास्थ्य, शिक्षा एवं राष्ट्र-जीवन के अन्य क्षेत्रों में समाज की सेवा करो, पर मोक्षरूप अपने मूलभूत आदर्श को कभी आँखों से ओझल न होने दो। कारण यह कि यदि हम बिना किसी आध्यात्मिक आदर्श के कोई सेवा-कार्य करना शुरू करेंगे, तो वह हमारे मन को बहिर्मुखी बना देगा और हम मोक्षरूप राष्ट्रीय आदर्श को अनदेखा कर देंगे।

देश में सर्वत्र परिव्रजन के फलस्वरूप स्वामीजी ने जनता की दुरवस्था को देखा था और उन्हें लगा था कि जब तक गरीबों की अवस्था में सुधार नहीं होता, भारत के नव-निर्माण की कोई आशा नहीं की जा सकती। जब वे पश्चिम में गये, तो उन्होंने यह भी देखा कि यद्यपि वहाँ के राष्ट्र बड़े ही सम्पन्न थे, फिर भी वहाँ गरीब लोग भी थे, जो धनी और शक्तिशाली लोगों द्वारा पैरोंतले रौंदे जा रहे थे। इसीलिए उन्होंने पददलित लोगों द्वारा किसी प्रकार की एक क्रान्ति लाये जाने की भविष्यवाणी की थी। यह लगभग अस्सी साल पहले की घटना है, और तब वह

प्रारम्भ ही था। उन्होंने समझ लिया था कि समाजवाद अब आ ही रहा है और कहा था, "मैं एक समाजवादी हूँ – इसलिए नहीं कि वह समस्त बुराइयों की रामबाण दवा है।" उन्होंने ऐसा इसलिए कहा कि कुछ उदारहृदय लोगों को, जो वहाँ की जनता की दुरवस्था का अनुभव करते थे, उन्होंने समाजवाद का प्रचार करते हुए देखा। वे लोग जनता की दशा को सुधारने में प्रयत्नशील थे और फलस्वरूप समाजवाद, साम्यवाद आदि अन्य वादों की उत्पत्ति हुई। उन लोगों का अभिप्राय सर्वथा उदात्त था, क्योंकि उनमें गरीबों के प्रति समवेदना थी और वे उनकी अवस्था में सुधार चाहते थे। यद्यपि स्वामीजी जानते थे कि समाजवाद हमारी समस्त समस्याओं का हल नहीं दे सकेगा, फिर भी उनकी दृष्टि में "नहीं-रोटी की अपेक्षा आधी-रोटी ही अच्छी" थी। समाजवाद हमारी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं को दूर नहीं कर सकेगा, क्योंकि वह पश्चिम की भौतिक सभ्यता का परिणाम है और वह केवल भौतिक स्तर पर ही कार्य करता है। वह उससे ऊपर नहीं उठ पाता। पर हमें तो जनता-जंनार्दन की सर्वविध उन्नति साधित करनी है – हमें उसे भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टि से ऊपर उठाना है। यहाँ के उच्च जातिवालों ने उन लोगों को इन सब बातों से वंचित करके रखा है और सारी उत्तम बातें अपने लिए रख ली हैं। स्वामीजी ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि लक्ष्य ब्राह्मण को शूद्र तक उतार लाना नहीं है, बल्कि शूद्र को ब्राह्मण तक ऊपर ले जाना है।

हमारे सामने यही करणीय कार्य है। अन्य कोई विकल्प नहीं है। आज तो, भारत में सर्वत्र, अधिकांश कार्य स्वार्थ पर आधारित हैं। कभी कभी हम अखबारों में ऐसी घोषणाएँ पढ़ते हैं कि राष्ट्रीय सम्पत्ति तीन या छः प्रतिशत बढ़ गयी है। प्रश्न उठता है कि यह बढ़ी हुई सम्पत्ति गयी कहाँ ? हमारे गरीब तो और भी गरीब बने हैं, उनकी दशा में सुधार कहाँ हुआ ? तो, जब तक गरीब की दशा नहीं सुधरती, हम ऐसी घोषणाओं से गर्व का अनुभव नहीं कर सकते। हमें उनके लिए काम करना होगा। लोग स्वार्थ से परिचालित होकर, विशेषकर व्यापार में लगे

हुए लोग, गैरकानूनी ढंग से संग्रह करके जनता को, गरीबों को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से जो वंचित कर रहे हैं, वह अपराध है। वह हमें सर्वनाश की ओर ही ले जाएगा।

हम भले ही शुतुरमुर्ग के समान सोचें कि हम तो सुरक्षित हैं, पर हम हैं नहीं। शुतुरमुर्ग कुत्तों के द्वारा पीछा किया जाने पर अपना सिर रेत में गड़ा लेता है और सोचता है मैं सुरक्षित हूँ। हमारा भी वही हाल है। जैसी कि कहावत है – 'हम कुछ लोगों को सब समय झाँसा दे सकते हैं और सब लोगों को कुछ समय, पर सब लोगों को सब समय झाँसा नहीं दे सकते।' वास्तव में हम निम्नवर्ग के लोगों को एक हजार साल से झाँसा देते आ रहे हैं और हमें भी दुःख भोगना पड़ा है। फलस्वरूप हमें विदेशी राष्ट्रों, विदेशी सल्तनतों की गुलामी भोगनी पड़ी है। पर अब तो हमारी आँखें खुलनी चाहिए और हमें इन सर्वहारा लोगों को उठाने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए, जिससे वे यह अनुभव कर सकें कि वे भी हमारे ही अंग हैं तथा यह कि यह राष्ट्र उनका भी अपना है और इस प्रकार वे राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हमारे साथ खड़े हो सके।

श्रीरामकृष्ण ने आकर हमें अध्यात्म के इस आदर्श के साथ सेवा का आदर्श भी दिया है, जिसका प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने न केवल भारत में किया, अपितु सारे विश्व में। यदि हमें जीवित बचे रहना है तथा नया भारत गढ़ना है, तो हमें उनका अनुसरण करना होगा, अन्यथा कोई आशा नहीं।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द हमें सही ढंग से सोचने की प्रेरणा दे तथा आज की आवश्यकता के अनुरूप सही सही कार्य करने में हमारी सहायता करें, जिससे न केवल हमारा अपना, न ही केवल भारत का, वरन् समूचे विश्व का भला हो सके।

❖ ❖ ❖

राष्ट्र के लिए हमारी विरासत*

रामकृष्ण मिशन जिन प्रमुख आदर्शों को लेकर चलता है और जिन्हें व्यवहार में उतारने में प्रयत्नशील है, उनमें से कुछ की मैं यहाँ पर चर्चा करूँगा।

पहला है धर्मों का समन्वय। श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्मों तथा हिन्दू धर्म के विभिन्न मतवादों द्वारा उपदिष्ट आदर्शों की साधना की और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्म ईश्वर-साक्षात्काररूप उसी एक लक्ष्य पर उपनीत होते हैं। हमारे देश के लिए यह कोई नया आदर्श नहीं है। ऋग्वैदिक काल में ऋषियों ने इस आदर्श की उद्घोषणा करते हुए कहा था – 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'। और तब से वह आदर्श आज तक चला आया है तथा देश के इतिहास में कई बार पुनरुद्घोषित हुआ है। श्रीकृष्ण ने वह बात फिर से गीता में कही। आचार्य शंकर ने भी हिन्दू धर्म के उस समय प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों को अपनी पंचदेवता-उपासना के माध्यम से समन्वित किया और यह आवश्यक कर दिया कि किसी भी देवता की उपासना से पूर्व यह पंचदेवता-उपासना की जानी चाहिए। आज के युग में श्रीरामकृष्ण ने इस महान् आदर्श को अपने जीवन में व्यावहारिक बनाकर दिखाया है। वर्तमान युग के लिए जिन महानतम आदर्शों की आवश्यकता है, केवल भारत में नहीं अपितु समूचे विश्व में – उनमें यह अन्यतम है। श्रीरामकृष्ण ने इसे वैज्ञानिक रीति से सिद्ध किया है – उन्होंने विभिन्न धर्म-मतों की अपने जीवन में साधना की और इस प्रकार यह प्रमाणित किया कि सभी धर्म अन्त में ईश्वर-साक्षात्काररूप उसी एक लक्ष्य को प्राप्त कराते हैं। इस युग में ऐसे वैज्ञानिक प्रमाण की आवश्यकता थी, जो उन्होंने प्रस्तुत किया। इस देश ने शताब्दियों से इस आदर्श का अपने हृदय में पोषण किया है। जो

---

* दिल्ली-स्थित रामकृष्ण मिशन में ३०-१२-१९७९ को 'दि रामकृष्ण मूवमेंट' नामक स्मारिका के विमोचन के अवसर पर अँगरेजी में प्रदत्त व्याख्यान।

विचार इस आदर्श के अनुरूप नहीं है, वह इस राष्ट्र की अग्रगति में बाधक होगा तथा राष्ट्र-जीवन में अनैक्य एवं विघटन उत्पन्न करेगा। पर हमें यह विश्वास है कि ऐसा विरूप विचार कोई स्थायी हानि पहुँचाने में समर्थ न होगा, क्योंकि इस महान् आदर्श का उल्लोड़न उसे गहराई में दबा देगा।

दूसरी बात जो श्रीरामकृष्ण ने संसार के राष्ट्रों के समक्ष रखी, वह थी मानवता की एकता। सबके पीछे, हर व्यक्ति के पीछे वही आत्मतत्त्व है – भले ही वह शिक्षित हो या अशिक्षित, धनी हो या निर्धन, भले ही वह किसी भी जाति, वंश या सम्प्रदाय का क्यों न हो। इस दृष्टि से उन्होंने देखा कि मानवता एक है, अतएव राष्ट्र और राष्ट्र के बीच, जाति और जाति के बीच,वर्गों या वंशों के बीच झगड़े का कोई कारण नहीं है। इसके साथ ही वे यह भी चाहते थे कि हमें निर्धन और पिछड़ी हुई मानवजातियों के सामाजिक उत्थान के लिए कार्य करना चाहिए। विशेषकर हमें अपने देश में पिछड़े हुए लोगों को उन्नत करना है, उन्हें शिक्षा देनी है और उनका आर्थिक स्तर उठाना है। और यह सेवा-कार्य उन्होंने उस महान् आदर्श से प्रेरित होकर करने को कहा, जिसे उन्होंने 'शिवज्ञान से जीवसेवा' के रूप में जगत् के समक्ष रखा। अतएव आप इस महान् आदर्श से प्रेरित हो जन-सेवा कीजिए, ऐसा मानते हुए कि आप शिव की ही सेवा कर रहे हैं। जब हम सबमें उसी एक आत्मा को देखते हुए सेवा-कार्य करते हैं, तो उसमें हम मात्र समाज का कल्याण नहीं करते, अपितु ईश्वर-साक्षात्काररूप लक्ष्य की ओर जाने में अपनी भी सहायता करते हैं, क्योंकि इस दृष्टिकोण को अपनाने से समाज-सेवा उपासना, पूजा बन जाती है। यदि हम पाषाण-मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा कर उसकी पूजा करते हुए ईश्वर के दर्शन कर सकते हैं, तो हम मनुष्य में उस ईश्वर की पूजा करते हुए, जहाँ वह स्वयं ही पहले से प्रतिष्ठित है, उसके दर्शन क्यों न कर सकेंगे ? मनुष्य में प्राणप्रतिष्ठा की कोई आवश्यकता नहीं, ईश्वर तो पहले से वहाँ विराजमान है। वह हर मनुष्य में विद्यमान है। यदि हम अपने दृष्टिकोण को बदल लें और सेवा करें, तो ऐसी सेवा हमें भी ईश्वर का साक्षात्कार करा दे सकेगी। स्वामी विवेकानन्द

ने इसी को द्विविध आदर्श के रूप में इस रामकृष्ण संघ के समक्ष रखा है – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'। आज देश में पिछड़े हुए लोगों को उठाने के लिए, उन्हें शिक्षा और संस्कृति देने के लिए इस महान् आदर्श की आवश्यकता है। हमारे देश के उच्च वर्ग के लोगों ने जनसाधारण को शिक्षा, संस्कृति आदि से वंचित रखा है। यह हमारे राष्ट्र की एक बड़ी कमजोरी रही है। स्वामीजी चाहते थे कि जनसाधारण को उठाना ही होगा। उन्होंने इस कार्य के लिए, जनसाधारण की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अपनी एक योजना दी है। यह नितान्त अनिवार्य है कि पिछड़े हुए लोगों की आर्थिक दशा में सुधार होना चाहिए। स्वामीजी ने लिखा था, "क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहते थे कि 'खाली पेट में धर्म नहीं होता'?" उन्होंने यह भी लिखा था, "मैं उस ईश्वर या धर्म में विश्वास नहीं करता, जो विधवाओं के आँसू नहीं पोंछ सकता अथवा अनाथ के मुँह में रोटी का टुकड़ा नहीं डाल सकता।" यह यही दिग्दर्शित करता है कि हमें अपने देश की विशाल गरीब जनता की दुर्दशा को मिटाने के लिए – उनके भले के लिए, अपने भले के लिए तथा राष्ट्र के भले के लिए अवश्य कुछ करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में मैं स्वामीजी के जीवन में घटी एक घटना का उल्लेख आपके समक्ष करूँगा। जब वे अमेरिका में थे, तब वे एक सज्जन के यहाँ रह रहे थे, जो करोड़पति राकफेलर के मित्र थे। राकफेलर ने अपने इन मित्र से स्वामीजी के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था, पर कभी वे न तो स्वामीजी से मिलने गये, न ही उनके भाषण सुनने। पर एक सुबह वे अचानक स्वामीजी के निवासस्थान पर बिना किसी पूर्वसूचना के आये और बिना कोई खबर भेजे सीधे स्वामीजी के कमरे में चले गये। स्वामीजी पत्र लिख रहे थे। कुछ वार्तालाप के बाद स्वामीजी ने अन्त में उनसे कहा, "जो पैसा तुमने कमाया है, वह तुम्हारा नहीं है। तुम मात्र एक ट्रस्टी हो। पैसा गरीबों का है और तुम केवल उस निधि के एक ट्रस्टी हो।" राकफेलर ऐसे व्यक्ति नहीं थे कि किसी की सलाह मानते। वे एकदम कमरा छोड़कर चले गये। पर कुछ घट गया। लगभग सप्ताह भर बाद वे पुनः आये।

स्वामीजी उसी कमरे में थे और पूर्व के ही समान पत्र लिख रहे थे। राकफेलर ने स्वामीजी के सामने एक दस्तावेज रख दिया, जिसमें किसी अनाथालय या ऐसी ही किसी परोपकारिक संस्था के नाम दान की एक बहुत बड़ी राशि लिखी गयी थी, और कहा, "लीजिए, अब आप जरूर सन्तुष्ट होंगे। आप मुझे इसके लिए धन्यवाद दे सकते हैं।" किन्तु स्वामीजी ने बिना सिर उठाये ठण्डे स्वर में कहा, "धन्यवाद तो तुम मुझे दोगे !" राकफेलर त्योंही बिना कोई बात किये कमरे से निकल आये। पर इस करोड़पति के मस्तिष्क में एक विचार-बीज स्वामीजी ने डाल दिया था, जो सतत कार्य करता रहा। फलस्वरूप उन्होंने बहुत से धर्मार्थ प्रतिष्ठानों की स्थापना की, जिन सबमें न्यूनाधिक मात्रा में, स्वामीजी से प्राप्त यह प्रेरणा कार्यरत दिखायी देती है। यद्यपि उन्होंने स्वामीजी का नाम नहीं लिया, पर यह अवश्य कहा है कि उन्हें इस प्रकार के विचार से प्रेरणा मिली है।

तो, मैं इस अवसर पर अपने सभी जनों से, इस देश के अपने उद्योगपतियों से अपील करना चाहूँगा कि वे परिस्थिति की गम्भीरता को समझें और पिछड़े हुए लोगों की अवस्था में सुधार लाने हेतु सामने आएँ। वे स्वामीजी की यह बात याद रखें कि वे भी अपने कमाये धन के ट्रस्टी ही हैं तथा गरीबों के लाभ के लिए उसका संचय किया है। मैं यह नहीं कहूँगा कि वे अपनी पूरी आय खर्च कर दें, पर यह अवश्य कहूँगा कि अपनी आय का एक भाग वे पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए अवश्य खर्च करें। इससे केवल राष्ट्र का और गरीबों का ही भला नहीं होगा, बल्कि उनका स्वयं का भला होगा। यदि देश का एक अंग गरीबी में डूबा हो, तो उसका प्रभाव सारे राष्ट्र पर पड़ना अवश्यम्भावी है। इससे सारे व्यापारी और उद्योगपति भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। रक्त को शरीर के सभी अंगों में संचरित होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो शरीर का वह भाग जिसमें रक्त नहीं दौड़ता, सूख जाता है तथा ग्रैंग्रीन (कोथ) के आक्रमण की सम्भावना पैदा हो जाती है, जिससे व्यक्ति का जीवन ही खतरे में पड़ जा सकता है। इसी प्रकार धन को भी राष्ट्र-शरीर के सभी अंगों में दौड़ना चाहिए, अन्यथा जिस अंग में उसका संचार नहीं होता, वह

राष्ट्र के जीवन को खतरे में डाल सकता है। अतः धनिकों को चाहिए कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से भी, वे अपनी सुरक्षा के लिए, इस तथ्य को न भूलें।

मैं देश के बड़े बड़े उद्योगपतियों के समक्ष यही एक विचार रखना चाहूँगा कि वे सामने आएँ और गरीबों तथा पिछड़े लोगों के लिए काम में लग जाएँ। इस सन्दर्भ में मैं एक छोटी सी घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। आन्ध्र प्रदेश में भयानक समुद्री तूफान से जो तबाही हुई थी, उसमें हम लोगों ने सेवा-कार्य चलाये थे और फिर हमने तूफान-पीड़ितों के पुनर्वास का कार्य हाथ में लेते हुए उन लोगों के लिए बहुत से घर बनवाये। तत्पश्चात् वहाँ के तथा हैदराबाद के कुछ धनिकों ने मिलकर 'ग्राम-श्री' नामक संस्था बनायी, जिसके माध्यम से वे गरीब तबके के लोगों को ऊपर उठाने के लिए काम कर रहे हैं। यह बहुत स्वस्थ संकेत है। यदि इस प्रकार देश भर के लोग अनुप्राणित हो जाएँ, तो देश का आर्थिक उन्नयन शीघ्र ही हासिल हो जाएगा।

जैसा आप 'दि रामकृष्ण मूवमेण्ट' नामक इस स्मारिका में देखेंगे, रामकृष्ण मिशन सुदूर पिछड़े हुए ग्रामों तथा शहरी क्षेत्रों में इस दिशा में कुछ काम कर रहा है, पर अपने देश के बृहद् आयतन और उसकी विशाल आवश्यकताओं को देखते हुए रामकृष्ण मिशन की उपलब्धियों को मैं विनयपूर्वक नगण्य ही कहूँगा। यह अत्यन्त धीमी गति है और जब तक जीवन के सभी क्षेत्रों और स्तरों के लोग सामने आकर इस गति को तेज नहीं करते, तब तक वह विशेष उपयोगी नहीं होगा। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह राष्ट्र के निर्माण हेतु सामने आए। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सारे राष्ट्र को जुटना होगा। जब विभिन्न समाज, अलग अलग संस्थाएँ और जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग आकर स्वामीजी के उपदेशानुसार राष्ट्रीय आधार पर देश के पुनर्निर्माण में लगेंगे, तभी देश के लिए कुछ आशा की जा सकती है। अतएव मैं पुनः इस देश के धनिकों से अपील करता हूँ कि वे आगे आएँ और राष्ट्र के हित के लिए, अन्ततः अपने हित के लिए, पिछड़े हुए लोगों के ऊपर उठने में सहायता दें।

इस आदर्श की प्राप्ति में श्रीरामकृष्ण हमारे सहायक हों यही उनके चरणों में मेरी विनम्र प्रार्थना है।

❖ ❖ ❖

संन्यासी तथा समाज*

जो विषय आज के विचार के लिए रखा गया है ('संन्यास तथा वर्तमान समय में समाज के प्रति उसका कर्तव्य'), उसे मैं कठिन मानता हूँ, क्योंकि उसकी ध्वनि कुछ उपदेशात्मक-सी प्रतीत होती है। पर मैं आरम्भ में ही स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैं आपको कोई उपदेश देने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ, प्रत्युत इस विषय को सोचते हुए जो विचार मेरे मन में भरे हुए हैं, उन्हीं को आपके समक्ष अभिव्यक्ति देने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ।

स्वामी विवेकानन्द ने हमें स्पष्ट रूप से बतला दिया है कि प्रत्येक राष्ट्र का एक महान् आदर्श होता है और वह उस आदर्श को प्राप्त करने की इच्छा सँजोये रखता है। जब तक वह आदर्श समुज्ज्वल रहता है, राष्ट्र की उन्नती होती है और आदर्श के मन्द पड़ जाने पर राष्ट्र की अधोगति शुरू हो जाती है। अन्त में आदर्श पूरी तरह नष्ट हो जाता है और फलस्वरूप राष्ट्र भी विलुप्त हो जाता है। दूसरे राष्ट्रों के समान भारत का भी अपना एक आदर्श था और वह था धर्म एवं मोक्ष। विगत चार हजार वर्षों से भी अधिक वह इस महान् आदर्श को पकड़े हुए है। कभी तो यह आदर्श उज्ज्वल था और कभी यह मन्द पड़ गया, पर इसे राष्ट्र ने कभी नहीं छोड़ा। इस अवधि में सब समय ही भारत में ऐसे अनेक लोग थे जो ईश्वरानुभूति और मोक्ष-प्राप्ति की चेष्टा करते हुए इस आदर्श को अक्षत बनाये रखने का प्रयास करते रहे। यह आदर्श राष्ट्र के समक्ष इस प्रकार रखा गया, जिससे

---

* रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम कनखल (हरिद्वार) के मन्दिर में श्रीरामकृष्ण की संगमर्मर-प्रतिमा ३-१२-१९८१ को प्रतिष्ठित हुई। इस उपलक्ष में ४-१२-८१ को आयोजित जनसभा, जिसमें कई महामण्डलेश्वर तथा अन्य सम्प्रदायों के संन्यासी उपस्थित थे, को सम्बोधित कर अँगरेजी में दिया गया व्याख्यान।

सब लोग धीरे-धीरे उस तक पहुँच सकें। भारत के सन्त-महापुरुष जानते थे कि हर व्यक्ति प्रारम्भ से ही इस आदर्श को पाने के योग्य नहीं है, उसे प्रशिक्षण के द्वारा इसके लिए योग्य बनाना पड़ता है। प्रशिक्षण की इस अवधि में उसे अपने संस्कारों के अनुसार जीवन का भोग करने की कुछ स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। इसलिए समूचे समाज को चार आश्रमों में विभाजित किया गया – ब्रह्मचर्य आश्रम, फिर गृहस्थ आश्रम, तत्पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम और अन्त में संन्यास आश्रम। इनमें से प्रत्येक आश्रम के लिए कुछ कर्तव्य निर्धारित किये गये। विद्यार्थी संसार के कोलाहल से दूर अपने अध्यापकों के साथ रहते, जो महान् चरित्रवाले व्यक्ति होते। जब विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त कर लेते, तब वे वापस समाज में लौट सकते थे, जिससे उसके हित के लिए काम कर सकते। गृहस्थ को अधिक उपार्जन करने की प्रेरणा दी जाती, जिससे वह कुछ मात्रा में जीवन का भोग कर सके, समाज को उन्नत बनाने में सहायता दे सके और आदर्श को इस प्रकार उपस्थित कर सके, जिससे हर व्यक्ति को मोक्षरूप इस महान् लक्ष्य की ओर जाने का अवसर प्राप्त हो सके। गृहस्थ के लिए ऐसाही कर्तव्य विहित था। और वास्तव में तो गृहस्थ आश्रम ही अन्य तीनों आश्रमों का आधार था, क्योंकि वे तीनों उसी पर निर्भर करते थे। वही समूचे समाज का, समूचे राष्ट्र का आधारस्तम्भ था। अन्त में संन्यास आश्रम आता था, जहाँ सारी सम्पत्ति त्याग दी जाती थी और व्यक्ति आदर्श की उपलब्धि के लिए अपने को पूरी तरह नियोजित कर देते थे। ये लोग अपने जीवन और उपदेशों के द्वारा त्याग की रोशनी और मोक्ष के आदर्श को राष्ट्र के समक्ष सतत प्रज्वलित बनाये रखते। इस प्रकार वे समाज को लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायता देते और समाज भी बदले में उन्हें अन्न और वस्त्र आदि के रूप में जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ प्रदान कर उनकी सहायता करता। संन्यासियों को अपनी आवश्यकताओं की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। समाज उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करता, जिससे वे बिना किसी विघ्न-बाधा के अपनी साधना में लगे रह सकें। पर अब परिस्थितियाँ वैसी नहीं हैं। समाज-जीवन,

राष्ट्र-जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। हम गीता में पढ़ते हैं कि प्रारम्भ में ही अर्जुन कृष्ण से कह रहा है कि युद्ध खराब है, क्योंकि उससे मनुष्य मारे जाते हैं तथा फलस्वरूप अधर्म का बोलबाला हो जाता है, सब प्रकार के गलत आदर्श सक्रिय हो उठते हैं, जीवन के उच्चतर मूल्य भुला दिये जाते हैं और सारा समाज भ्रष्ट हो जाता है।

हम अपने ही जमाने में देखते हैं कि दो महायुद्धों के फलस्वरूप वैसा ही हो गया है जैसा कि अर्जुन ने कहा था। समाज विच्छिन्न हो गया है, जीवन के उच्चतर मूल्य नष्ट हो गये हैं, मनुष्य गलत आदर्शों को पकड़े बैठे हैं तथा केवल भारत में नहीं अपितु सारे संसार में एक घोर अव्यवस्था का बोलबाला हो गया है। चहुँ ओर हम एक मुर्दनी छायी देखते हैं। इस शोचनीय स्थिति में संन्यासी के रूप में हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए ? हम संन्यासियों को एक कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

इस समस्या की ओर देखने के हमारे केवल दो ही तरीके हो सकते हैं। या तो हम अपने को समाज से काट लें, जैसा कि हम अब तक करते रहे हैं, यह सोच लें कि हमें समाज से कोई लेना-देना नहीं है, या फिर हम समाज के दुःख को अपना समझें और लोगों के पास जाएँ, सामान्य मनुष्य के स्तर पर अपने को उतार लें और उन्हें फिर से उठाने के लिए उनके साथ मिलकर काम करें। मेरे मत में, दूसरे विकल्प पर अधिक जोर देना चाहिए, क्योंकि यदि हम समाज से अपने को काट लेंगे और लोगों से मेल-जोल नहीं बनाएँगे, तो हमारा संन्यास-धर्म जोखिम में पड़ जाएगा और धीरे धीरे अपनी सारी शक्ति गँवा बैठेगा। जहाँ तक मुझे विदित है, सभी संन्यासी-सम्प्रदायों में संन्यासी-कार्यकर्ताओं की कमी है। यदि मैं गलत कहता होऊँ, तो सुधारा जाना पसन्द करूँगा। पर यह स्पष्ट है कि अच्छे संन्यासियों की संख्या क्रमशः गिरती जा रही है। ऐसा क्यों ? इसलिए कि साधारण रूप से समाज में त्याग का भाव अब नहीं दिखायी पड़ता। हम संन्यासी लोग कोई आकाश से तो टपकते नहीं, हम समाज से ही आते हैं। केवल समाज

ही अच्छे संन्यासियों को जन्म देता है, जो स्वयं चारित्रिक दृष्टि से स्वस्थ और नैतिक दृष्टि से मजबूत है। यदि लोगों के पास जाने एवं उनके बीच काम करने से हम कतराएँगे, तो वे अपने को कैसे सुधारेंगे और सही रास्ते पर कैसे चलेंगे? यदि उनमें चरित्र और अध्यात्म की दृष्टि से कोई उन्नति न हो, तो हमें त्याग की अग्नि से युक्त लड़के कहाँ से मिलेंगे ? और यदि ऐसे रोगी समाज से कुछ लड़के संन्यास का जीवन अंगीकार करने आगे आएँगे भी, तो वे गीता वार्तिककार श्रीधर स्वामी की भाषा में 'पिशुनाः कलहोत्सुकाः' (निन्दा और कलहके लिए उत्सुक) की श्रेणी के ही होंगे। अतएव अपने स्वार्थ को देखते हुए भी यह हमारे लिए नितान्त आवश्यक है कि हम लोगों के बीच जाएँ तथा उन्हें चारित्रिक और आर्थिक दृष्टि से उठाने की चेष्टा करें। इसके अलावे, संन्यासी के रूप में हम पर समाज का ऋण भी है, जिसे जनता-जनार्दन की अवस्था में सुधार लाने का प्रयास कर तथा समाज को एक बेहतर आधार पर पुनर्गठित करने में सहायता कर हम अदा कर सकते हैं।

एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि संन्यासी ऐसी उन्नति के लिए किस प्रकार कार्य कर सकते हैं ? मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारी समस्त कठिनाइयों और दुःख-कष्टों की जड़ में शिक्षा है। हमारी शिक्षा वास्तव में शिक्षा नाम के ही योग्य नहीं है। वह निषेधात्मक है। शिक्षा-प्रणाली में नैतिकता या धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। हमारी शैक्षणिक संस्थाएँ लड़कों को उचित संस्कार नहीं दे पातीं। यदि हमारी शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है, तो हम यह आशा नहीं कर सकते कि उससे ऐसे महान् पुरुष बनकर निकलेंगे, जो देश का भार अपने कन्धों पर ले लोगों की सहायता करेंगे। अतः शिक्षा-प्रणाली को पूरी तरह बदलना होगा। शिक्षा, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा, मनुष्य बनानेवाली हो। संन्यासियों को शिक्षा का भार ले लेना पड़ेगा। तभी शिक्षा-प्रणाली को अध्यात्म की नींव प्राप्त होगी। प्राचीन युग में भारत में ऐसी ही शिक्षा-प्रणाली थी। उसमें लौकिक शिक्षा के साथ साथ अध्यात्म की शिक्षा पर भी बहुत बल दिया जाता था। मुझे नारद की कथा स्मरण

आती है, जो ऋषि सनत्कुमार के पास गये और बोले, "मैंने सारे वेद आदि का तो अध्ययन किया है, पर मुझे मन की शान्ति नहीं है।" गुरु ने इस पर पूछा, "अच्छा, तुमने यह-वह तो बहुत जाना है, पर क्या तुम सत्य को जानते हो ?" नारद का उत्तर "नहीं" में था। यह कथा इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि वह यह बताती है कि बिना धार्मिक आधार के हमारी शिक्षा अनुपयोगी है। हम भले ही चन्द्रमा में जाने की अपनी उपलब्धि की डींग मारते रहे, पर उससे हम अपने आदर्श पर नहीं पहुँचेंगे।

यहाँ पर हमारा संन्यासी-समाज कुछ रचनात्मक कार्य कर सकता है। जब हमारे विद्यालय और शिक्षण-संस्थान हमारे बच्चों को चरित्र-निर्माण करनेवाली शिक्षा देने की स्थिति में नहीं है, तो हम संन्यासियों का कर्तव्य हो जाता है कि शिक्षा के कार्य को हम अपने हाथों में लें और अपने बच्चों को सही शिक्षा देने की चेष्टा करें। केवल धन या सम्पत्ति ही मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकती। कहा भी तो है – "मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीता।" उसे जीने के लिए और कुछ चाहिए तथा वह है जीवन के उच्चतर मूल्य। जनसाधारण को इन मूल्यों की शिक्षा देने के लिए हमारे साधु-समाज को गाँव-गाँव जाना होगा, मनुष्य-मनुष्य के पास पहुँचना होगा और उन लोगों को एक ओर धर्म, अध्यात्म एवं चरित्र-निर्माण के विज्ञान की शिक्षा देनी होगी तथा दूसरी ओर हस्तकला, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य एवं सफाई का ज्ञान देना होगा। केवल धार्मिक शिक्षा देने से काम न बनेगा, क्योंकि हमारे देश के अधिकांश लोग गरीबी रेखा से नीचे जीते हैं। पहले उन्हें गरीबी से ऊपर उठने में मदद देनी होगी, क्योंकि श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – "धर्म खाली पेटवालों के लिए नहीं है।"

अतएव संन्यासी लोग संसार के लोगों के पास जाकर, मनुष्य-मनुष्य के बीच विद्यमान अस्वाभाविक भेद को मिटाकर तथा जातिभेद के दुराग्रह से उत्पन्न असन्तुलन को दूर कर एक नये समाज के गठन में सहायक हो सकते हैं। उन्हें चाहिए कि वे अधिक विद्यालय और महाविद्यालय खोलें, जहाँ विद्यार्थी लौकिक

शिक्षा के साथ साथ भारतीय जीवन-मूल्यों की भी शिक्षा प्राप्त कर सकें। इससे समाज के लोग संन्यासियों के साथ घनिष्ठ रूप से मिल सकेंगे। यदि हम संन्यासियों ने जनता के साथ इस प्रकार का मेल-जोल बनाकर रखा होता, तो अभी हाल में हमारे बहुत से भाइयों द्वारा दूसरे धर्म का जो ग्रहण करना हुआ, वह न हो पाता। इससे अब हमें एक सबक सीखना चाहिए, और समाज में सब तबके के लोगों के साथ सार्थक मेल-जोल स्थापित करने के लिए सक्रिय हो जाना चाहिए। हमें उन्हें लौकिक शिक्षा देनी होगी तथा साथ ही मोक्ष के इस आदर्श की उपलब्धि के लिए उन्हें तैयार करना होगा। हम उन्हें मोक्ष के आदर्श की शिक्षा दे तो रहे हैं, पर यह खाली पेट के साथ कार्यरत नहीं हो पाती। अतएव साधु-समाज के हम सदस्यों का कर्तव्य हो जाता है कि हम अपनी जगह से कुछ नीचे उतरें, लोगों के साथ मिलें-जुलें, उन्हें शिक्षा दें तथा आर्थिक, शारीरिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से उन्हें ऊपर उठाने का प्रयास करें। जब मनुष्य इन दृष्टियों से सम्पन्न होता है, तभी उसे धर्म की बात सुनने में रुचि होती है। जब समाज में ऐसा स्वस्थ वातावरण तैयार हो जाए, तब हम संसार से पुनः अपने मठों में लौट आ सकते हैं, जंगलों में रह सकते हैं और अपने जीवन के पुराने तौर-तरीके अपना सकते हैं। यही मेरी दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द के आदर्श के अनुकूल होगा।

मुझे भय है कि कहीं मैं अपनी मर्यादा का लंघन तो नहीं कर रहा हूँ। पर मैं यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि मैंने उपदेश देने की दृष्टि से ये बातें नहीं कहीं हैं। मुझे कृपया अन्यथा न समझिएगा। साधु-समाज को उपदेश देने की धृष्टता नहीं करूँगा। यह तो मैंने आत्मविश्लेषण किया है। मेरे अपने मन में जो विचार उठ रहे थे कि हम संन्यासी लोग समाज के लिए क्या कर सकते हैं, बस उन्हीं विचारों को शाब्दिक अभिव्यक्ति दी है – और कुछ नहीं।

इससे ऐसा भी नहीं समझ लेना चाहिए कि मात्र साधु-संन्यासियों को ही यह सब कार्य करना है, बल्कि जो गृहस्थ भक्त हैं, उन्हें भी यह कार्य करना है। विशेषकर जो लोग अपने को रामकृष्ण-विवेकानन्द का भक्त मानते हैं, उन्हें गाँवों

में जाना होगा और निर्धन एवं उपेक्षित लोगों को आर्थिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मदद देनी होगी। तभी वे सही मायनों में रामकृष्ण-विवेकानन्द के भक्त कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द हम पर अपने आशीर्वाद का वर्षण करें, जिससे हम इस संकटपूर्ण घड़ी में से सुरक्षित उबर सकें तथा एक नये समाज का निर्माण कर सकें। मेरी उनके चरणों में यही प्रार्थना है कि केवल भारत के ही नहीं अपितु सारे विश्व के लोग ईश्वर के प्रति विश्वाससम्पन्न हो धार्मिक जीवन बिताते हुए सुख के भागी बनें।

आदिवासियों तथा पिछड़ी जातियों के कल्याणार्थ कार्य

१. सफाई – आसपास के वातावरण को साफसुथरा रखना होगा।

२. आरोग्य – वातावरण, घर एवं व्यक्ति के आरोग्य की ओर ध्यान देना होगा।

३. गाँव के सभी बच्चों की आँख, दाँत और पेट (कृमि) की बीमारियों की वैज्ञानिक जाँच एवं चिकित्सा की व्यवस्था करनी होगी। बड़ों के लिए साधारण चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा की व्यवस्था करनी होगी। (नेत्र के अस्त्रोपचार के लिए नेत्रशिबिर की व्यवस्था हो।)

४. पीने के पानी की व्यवस्था करनी होगी।

५. विद्यालय – विद्यालयों के सभागृह का जनसाधारण की सभा के लिए उपयोग करना होगा तथा वहाँ पर सन्ध्या समय प्रार्थना, भजन एवं श्रीरामकृष्णदेवसंबंधी पुस्तकों का पठन करना होगा।

६. आर्थिक उन्नति – उपलब्ध माल तथा स्थानीय लोगों की आवश्यकता का विचार करते हुए तदनुसार हस्तकला एवं लघु-उद्योग की व्यवस्था करनी होगी। मत्स्यपालन, मुर्गी और बत्तख पालन, मधुमक्खीपालन, फल और सब्जियों की बागवानी तथा मिट्टी के वैज्ञानिक परीक्षण एवं खाद आदि के द्वारा प्रगत कृषिकार्य का प्रचलन करना होगा।

७. चलचित्रों के माध्यम से धर्म, संस्कृति तथा विभिन्न विषयों की साधारण शिक्षा देनी होगी।

ये केवल सूत्र हैं। स्थानीय परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए तदनुसार प्रत्येक कार्य के लिए विस्तृत रूप से विचार करना होगा।

№ 1146

स्वामीजीने वह रास्ता हमें दिखाया है,
जिस पर चलकर हम मानव-पीड़ा को
हर सकते हैं।
यदि हम उनका निर्देश न माने,
तो हम व्यर्थ ही अपने को
उनका अनुयायी कहते है।

– मातृभूमि के प्रति हमारा कर्तव्य से

रामकृष्ण मठ, (प्रकाशन विभाग)
रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर ४४० ०१२

(H-102) Matribhumi Ke Prati Hamara Kartavya : Rs. 10.00